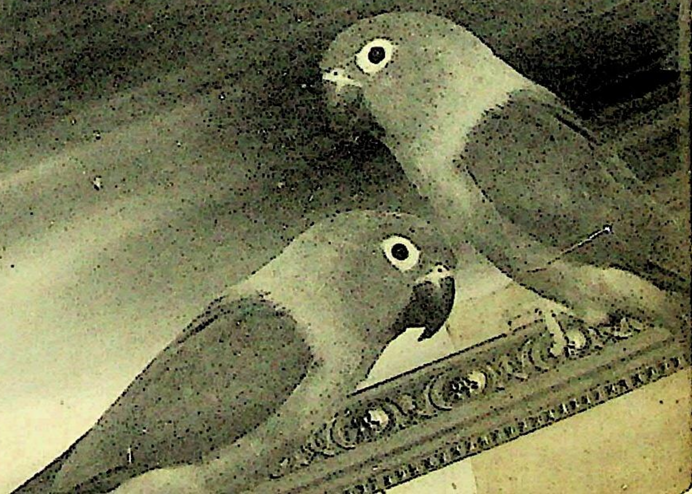
सप्तदशी

हिन्दी की सत्रह प्रतिनिधि कहानियाँ



सम्पादक
विष्णु प्रभाकर

सप्तदशी

हिन्दी की सत्रह प्रतिनिधि कहानियाँ

•

सम्पादक
श्री विष्णु प्रभाकर

•

२००५



सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

ISBN 81-7309-091-2

प्रकाशक
मंत्री
सस्ता साहित्य मण्डल
एन-७७, पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-११०००१
दूरभाष : २३३१०५०५, ५१५२३५६५
शाखा : १२६, जीरो रोड, इलाहाबाद
दूरभाष : ०५३२-२४०००३४

•

तीसरी बार : २००५
प्रतियाँ : ११००
मूल्य : रु. ४५.००

•

लेजर कम्पोजिंग
शुभारम्भ प्रिन्टर्स, नई दिल्ली

•

मुद्रक
बुकमैन प्रिन्टर्स
दिल्ली-११००६२

आमुख

जीवन एक कहानी है। मनुष्य में जब पहली बार चेतनता जागी होगी तब शायद उसने सोचा होगा—'मैं कौन हूँ ? कहाँ से और क्यों आया हूँ ? यह मेरे चारों तरफ क्या फैला पड़ा है ?" फिर इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसने अपने आप ही उत्तर देना भी शुरू कर दिया होगा। वह क्रम आज तक चला आ रहा है परन्तु न तो प्रश्न समाप्त होते हैं और न उनका उत्तर। हर-एक उत्तर में से एक नया प्रश्न पैदा हो जाता है और इसी प्रश्नोत्तर में से निकलकर यह विराट् जीवन चारों और बिखर गया है। इसमें जानने की इच्छा अर्थात् जिज्ञासा भी है और अपनी बात कहने की, अपने को प्रकट करने की भावना अर्थात् आत्माभिव्यक्ति भी। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि मनुष्य अपनी बात करता है और अपने चारों ओर जो संसार फैला हुआ है उसको जानना चाहता है। इसी कहने और जानने में कहानी का जन्म होता है। जिज्ञासा और आत्माभिव्यंजना की जो दो प्रवृत्तियाँ हैं वे कहानी कला की सृजन शक्तियां हैं। इसीलिए कण्ठ फूटते ही बच्चा कहानी सुनना चाहता है और यदि उसकी कल्पना शक्ति तनिक भी जागृत है तो वह कहानी सुनाना भी चाहता है।

यह क्रम चेतनता के जन्मकाल से ही चला आ रहा है। संसार के प्राचीन से प्राचीन साहित्य में कहानी का अस्तित्व मिलता है। वेदों में कथानक ही नहीं सम्वाद और चरित्र भी है। उनका रूप वह नहीं है जो आधुनिक कहानी का है; पर जो कुछ है वह कम रोचक नहीं है। ब्राह्मण, दर्शन, उपनिषत्, सूत्र और पुराणादि सभी धर्म-ग्रन्थों में कहानियों के द्वारा अपनी बात समझाने का प्रयत्न किया गया है। रामायण और महाभारत तो स्वयं महाकथाएं हैं। जैनधर्म में कथाओं का अक्षय भंडार है। बौद्ध-कालीन कथा-साहित्य में 'जातक' प्रसिद्ध हैं। एशिया और यूरोप के प्राचीन कथा-साहित्य पर जातक-कथाओं का बहुत प्रभाव माना जाता है। दूसरे देशों का पौराणिक साहित्य (माइथालाजी) भी कथाओं का संग्रह मात्र हैं। बाइबल में तो अनेक सुन्दर कहानियाँ हैं। अरस्तु ने ग्रीस देश के दुखान्त नाटकों का मुख्य उद्देश्य कहानी कहना ही निश्चिति किया था। पैशाची की वृहत्कथा और संस्कृत के पंचतंत्र और हितोपदेशादि कुछ और प्रसिद्ध कथा संग्रह हैं। संस्कृत में इस प्रकार का अन्तिम संग्रह

''दशकुमारचरित्र'' है ।

इन कथाओं में मनोरंजन के साथ-साथ तत्कालीन युग के आदर्शों, आकांक्षाओं और भावनाओं का चित्रण है । इनमें उपदेश, ज्ञान, चातुर्य, नीति, व्यंग, साहसिक कार्यों और यात्राओं का वर्णन तथा समाज की आलोचना सब कुछ है । साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है । कहानी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । एक दृष्टि से उसके दूसरे अंग इतिहास, निबन्ध, कवितादि से वह अधिक महत्त्वपूर्ण है । महत्त्व का यही अन्तर कहानी की लोकप्रियता का कारण है । बहना पानी का स्वभाव है और वह सदा नीचे की ओर बहता है अर्थात्, जिधर वह आसानी से बह सकता है उधर ही-बहता है । यही मनुष्य का स्वभाव है । वह सदा इस प्रयत्न में रहता है कि उसकी जिज्ञासा का समाधान इतना सरल हो कि उसे समझने के लिए बुद्धि पर कम-से-कम जोर लगाना पड़े । इतिहास में अधिकतर राजनैतिक और वह भी कुछ विशिष्ट श्रेणियों के विशिष्ट व्यक्तियों की चर्चा होती है । वह अपने काल के समाज का दर्पण नहीं होता । निबन्ध में केवल सिद्धान्त और तथ्य की बात बताई जाती है, इसके विपरीत कविता की अतिरंजित भावना तथ्य को बहुत कुछ छिपा लेती है परन्तु कहानी में वस्तु के उस रूप के दर्शन होते हैं जो वास्तविक ही नहीं बल्कि सत्य भी है । कहानी की घटनाओं और उनके विश्लेषण से मनुष्य जीवन को समझने में जल्दी सफल हो जाता है । कहानी में राजनीति, धर्म, विज्ञान और दर्शन सभी का वर्णन होता है, पर वह जीवन से व्यावहारिक सम्बन्ध के रूप में होता है । वह किसी सिद्धान्त का व्यावहारिक पक्ष है । इसी को उदाहरण कहते हैं ।

मनुष्य में एक और प्राकृतिक गुण है । वह है उसका सौन्दर्य-प्रेम । उसके सौन्दर्य का आधार अच्छा लगना है । अच्छा लगने में रोचकता और उपयोगिता दोनों हैं । यहीं पर साहित्य के साथ कला का सम्बन्ध जुड़ता है । कला सजाने का काम करती है । वह उपयोगिता और रोचकता दोनों दृष्टियों से साहित्य को सुन्दर बनाती है ।

तब कहानी की परिभाषा यह हुई—''कहानी में मनुष्य की जिज्ञासा का समाधान इतनी रोचकता से व्यक्त होता है कि वह जीवन के विकास को गति देता हुआ उसे अधिक से अधिक बोधगम्य और व्यापक बना देता है ।'' यहाँ पर कुछ और परिभाषाएँ देना अप्रासंगिक न होगा । फोस्टर के मत में ''कहानी घटनाओं का वह सम्बद्ध क्रम है जो किसी परिणाम पर पहुँचा दे ।'' एडगर एलन पो ने लिखा है—''कहानी एक प्रकार का वर्णनात्मक गद्य है जिसके पढ़ने में आध घण्टे से लेकर एक

घण्टे तक का समय लगे ।" ह्यूवाकर ने दो शब्दों में कहानी की कहानी कही है— " जो मनुष्य करे वही कहानी ।" इलाचन्द्र जोशी के मतानुसार—"जीवन का चक्र नाना परिस्थितियों के संघर्ष से उल्टा सीधा चलता रहता है । इस सुवृहत चक्र की किसी विशेष परिस्थिति की स्वाभाविक गति का प्रदर्शन ही कहानी होता है ।"

इन परिभाषाओं में कहानी के बाह्यरूप को अधिक छुआ गया है । जोशीजी की सुन्दर परिभाषा भी फोटोग्राफी से आगे नहीं बढ़ती । प्रेमचन्दजी ने परिवर्तित होते हुए मूल्यों का सदा ध्यान रखा था । इसीलिए उन्होंने अन्त में कहानी की परिभाषा इस प्रकार निश्चिति की थी--"कहानी अब जीवन के बहुत निकट आ गई है ।...उसका आधार अब घटना नहीं मनोविज्ञान की अनुभूति है । आज का लेखक केवल रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने नहीं बैट जाता । उसका उद्देश्य स्थूल सौन्दर्य नहीं । वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है जिसमें सौन्दर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओं को स्पर्श कर सके ।"

कहानी की यह एक सुन्दर व्याख्या है परन्तु उन्होंने जिस मनोविज्ञान की बात कही है उसके बारे में एक बात ध्यान में रखनी आवश्यक है । वह यह कि मनोवैज्ञानिक अध्ययन ऐसा नहीं होना चाहिए कि कहानी-साहित्य उसका लक्षण ग्रंथ बन जाए । मनोविज्ञान अस्वस्थ मन और मस्तिष्क की परीक्षा के लिए ठीक है पर वह उनका इलाज नहीं कर सकता । यदि हम मनोविज्ञान को ही आधार मानकर चलेंगे तो हमारे साहित्य में अस्वस्थ मन और अर्द्धविक्षिप्त चरित्रों का बाहुल्य हो जावेगा । इसके अतिरिक्त इससे एक और हानि होती है; कहानी केवल व्यक्ति तक सीमित रह जाती है । वह व्यक्तियों का अर्थात् समूचे समाज का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती । ऐसा होने पर उसे समाज का दर्पण कहलाने का अधिकार नहीं रहता ।

कहानी की परिभाषा के विकास को और अच्छी तरह समझने के लिए प्राचीन और नवीन कहानी के अन्तर को समझना भी आवश्यक है । प्राचीन कहानी में अलौकिक और आकस्मिक घटनाओं की प्रधानता रहती थी । घटना-चमत्कार, उपदेश, अभौतिक और अतिभौतिक सत्ता का उपयोग तथा निर्णयात्मक प्रवृत्ति आदि कुछ तत्त्व प्राचीन कहानी के लिए अनिवार्य थे । मनोरंजन उनका एकमात्र लक्ष्य था परन्तु जैसे युग बदला भौतिक विचारधारा प्रबल हुई तो जनता की रुचि, भावना और आदर्श सभी बदल गए । भारत में यह परिवर्तन बीसवीं सदी के आरम्भ में हुआ क्योंकि इसी समय उसका सम्पर्क पाश्चात्य संस्कृति और विचारों से हुआ । अलौकिक

से हटकर हमारा विश्वास भौतिक सत्ता में जमने लगा । मनुष्य का मूल्य बढ़ गया और उससे अधिक मूल्य बढ़ा मनुष्य के मन और मस्तिष्क का । प्राचीन कहानी में मनोरंजन की सृष्टि संयोग के कारण होती थी, अब मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा होती है । प्राचीनकाल की कहानियों में मनुष्य की बाह्य प्रवृत्ति का चित्रण होता था, आधुनिक कहानी में अन्तः प्रवृत्ति का चित्रण होता है । प्राचीन कहानी के पात्र राजा, रानी और राजकुमारादि होते थे, आधुनिक कहानी में झगडू साहू, जुम्मन शेख, घीसू चमार और मुन्नू मेहतर प्रमुख हैं । प्राचीन कहानी का आरम्भ प्रायः "एक था राजा. ...." से होता था और अन्त में नाटक के भरत-वाक्य की भांति "जैसे उनके दिन बीते वैसे सब के बीतें" ऐसी कोई शुभ कामना रहती थी; आधुनिक कहानी का आरम्भ कथानक के उस स्थल से होता है जो सब से अधिक रोचक और मार्मिक है । अन्त की आज किसी को चिन्ता नहीं; कथाकर पाठक को एक ऐसे क्लाइमैक्स (पराकाष्ठा) पर ले जाकर छोड़ देता है जहाँ पहुँचकर उसकी निरन्तर बढ़ती हुई उत्सुकता शान्त हो जाती है । और इधर तो कहानी की परिभाषा इतनी व्यापक हो गई है कि घटना और पराकाष्ठा विहीन रेखा-चित्र भी उसके अन्तर्गत माने जाने लगे हैं ।

यह परिवर्तन एकदम नहीं हो गया है और न अभी बन्द ही हुआ है । प्रेमचन्दजी ने लिखा था-"आधुनिक कहानी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ चित्रण को अपना ध्येय समझती है ।" परन्तु आज वह इस सीमा रेखा को भी लाँघ चुकी है । कथाकार केवल यथार्थ का चित्रण ही नहीं करता बल्कि उस यथार्थ को जन्म देने वाली परिस्थितियों का वैज्ञानिक विश्लेषण भी करता है । क्या यह स्थिति ठीक है ? यदि नहीं तो, क्या होनी चाहिए ? इन प्रश्नों से आज का कथाकर मुंह नहीं मोड़ना चाहता । यह उचित ही है परन्तु इस प्रवृति से एक बहुत बड़ी हानि होने की संभावना है और वह हो भी रही है । आज इस पथ के कुछ पथिक कलाकार के स्थान पर प्रचारक बन गये हैं । तार्किक का तर्क है कि लेखक मात्र प्रचारक है । प्रचारक होना अपने आप में कोई पाप नहीं है परन्तु जब ऐसे लेखकों की कहानियाँ किसी दल विशेष की नारेबाज़ी बन कर रह जाती हैं तो यह नारेबाज़ी कलाकार के दिवालिएपन का नारा बुलन्द करती है । राजनीतिज्ञ, धर्मगुरु और सुधारक ये सब प्रचारक हैं परन्तु कलाकार किसी दल या व्यक्ति का आदेश नहीं मान सकता और न ही उसकी कला का उद्देश्य किसी को आदेश देना है । कलाकार पर केवल एक ही बंधन है कि वह

अपनी अनुभूति तथा अपनी कला की अभिव्यक्ति के प्रति ईमानदार बना रहे अर्थात् वह अपनी भावना और अपने पात्रों में समा जाए। जब ऐसा हो जाता है तो सहानुभूति अर्थात् अपने से परे दूसरे को समझने की वृत्ति जागृत होती है। कला और जीवन एक हो जाते हैं। कलाकार अपनी बात पाठक के हृदय तक पहुंचाकर भी प्रचारक नहीं बनता। क्योंकि तब उसके विचार केवल उसके नहीं रहते। यथार्थ और आदर्श के इस समिश्रण से ही कहानी कला सशक्त होती है।

कहानी की चर्चा करते-करते टेकनीक (लिखने की कला) की याद आ जाना स्वाभाविक ही है लेकिन जैसे छन्द घोट-घोट कर कोई कवि नहीं बन जाता उसी तरह टेकनीक याद करके कोई कहानी लिखना नहीं सीख सकता। वह तो अनुभूति और अभिव्यक्ति का प्रश्न है। जिस कथाकार ने जीवन की गहराई को आंका है, जो आँख खुली रख कर जीता है अर्थात् जिसकी दृष्टि व्यापक है उसे पग-पग पर कहानी के प्लाट मिल सकते हैं। तब उनके हृदय से जो कुछ भी कहानी के रूप में निकलेगा वह कहानी की दी गई टेकनीक पर अवश्य पूरा उतरेगा। नहीं उतरेगा तो नई टेकनीक का निर्माण करेगा। वैसे टेकनीक का प्रश्न कला के अन्तर्गत आता है। वह कहानी के शरीर को सँवारने और सजाने का काम करती है। रोचकता उसकी सफलता की कसौटी है। जो कहानी अपने को पढ़वा लेती है उसीकी टेकनीक सर्वश्रेष्ठ है, भले ही उसका विषय कुछ भी हो। कहानी पर विषय का कोई प्रतिबन्ध नहीं है पर युग के साथ वह बदलता रहता है। प्राचीन और आधुनिक कहानी की तुलना करते समय ऊपर उसका विवेचन हो चुका है। अलौकिक, आकस्मिक और बाह्य जीवन के कथानक आज लोकप्रिय नहीं हैं। बुद्धि जिनको स्वीकार करती है वे ही मनोवैज्ञानिक, लोक कल्याणकारी, मनुष्य के अन्तर्जीवन; अन्तःप्रवृत्तियों की झाँकी देने वाले कथानक आज की कहानी के आधार हैं। चरित्र-प्रधान और वातावरण-प्रधान कहानी से अधिक आज प्रभाववादी-कहानी अधिक लोकप्रिय हैं। भावनाओं की जितनी सूक्ष्म व्यंजना होती है, प्रभाव जितना व्यापक होता है कहानी उतनी ही सफल मानी जाती है। सामयिक सत्य की व्यंजना प्रभाववादी कहानी के अतिरिक्त व्यंगात्मक कहानी से भी सफलतापूर्वक हो सकती है।

कथानक के लिए दो-तीन बातें जाननी काफ़ी हैं। वह अधिक से अधिक रोचक, स्वाभाविक और लोककल्याण की भावना से ओतप्रोत हो। उसका प्रारम्भ पकड़ने वाला हो, उसका विकास उत्सुकता को बनाए रखे और उसकी पराकाष्ठा (क्लाईमैक्स)

पर पहुंचकर पाठक की उत्सुकता शान्त हो जाए। आज की कहानी में अनेक रस और अनेक घटनाओं के लिए स्थान नहीं है। स्थल, समय और कार्य के सामंजस्य ने अर्थात् एक प्रसंग और एक तथ्य के चित्रण ने आज की कहानी के कथानक को तीव्र और सशक्त बना दिया है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन के कारण चरित्र-चित्रण की समस्या भी सुलझ गई है। वह अब अधिक स्वाभाविक और सजीव होता है। एक और प्रवृत्ति इधर बढ़ रही है। लेखक कम-से-कम शब्दों में चित्र खींच देता है। वह अब व्याख्या नहीं करता केवल संकेत करता है। चित्रकला में 'पेन्सिल स्केच' और यातायात के साधनों में 'हवाई जहाज़' से उसकी तुलना की जा सकती है। वर्तमान जीवन कितना सिमटता जा रहा है यह उसीका प्रभाव है। कथानक के अतिरिक्त कथोपकथन का भी कहानी में गौण स्थान नहीं है। चरित्र-चित्रण, घटनाओं की गतिशीलता और भाषा की तीव्रता के लिए वह अनिवार्य है। स्वाभाविक, भावप्रधान, सरल और चुस्त वार्तालाप कहानी की शक्ति है।

कहानियाँ लिखने की प्रणालियाँ भी बहुत हैं। ऐतिहासिक शैली की कहानियों में लेखक इतिहासकार की भांति तटस्थ होकर घटनाओं का वर्णन करता है। यथार्थवादी कहानियों में इस शैली का सुन्दर विकास हुआ है। आत्मचरित्र शैली की कहानी में प्रधान पात्र अपनी कथा कहता है। जो कहानियाँ पत्रों के रूप में लिखी जाती हैं वे पत्र शैली के अन्तर्गत आती हैं। डायरी शैली जिसमें किसी पात्र की डायरी से कहानी का विकास होता है हिन्दी में बहुत कम प्रचलित हैं। एक और शैली है जिसमें केवल वार्तालाप ही रहता है। इसे कथोपकथन शैली कहते हैं। यह भी बहुत कम लोकप्रिय है।

भाषा भी कहानी की सफलता और असफलता का एक बड़ा कारण है। जिस कथाकार का जीवन और जनता से जितना अधिक सम्पर्क होगा उसकी भाषा उतनी ही सबल और स्वाभाविक होगी, वह उतना ही अधिक पढ़ा जाएगा। पाण्डित्य का प्रदर्शन कहानी कला का गला घोटने जैसा है। रोचकता के लिये मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है परन्तु प्राचीन काल के अलंकार आज कहानी का बल नहीं दुर्बलता माने जाते हैं। विराम चिन्हों का प्रयोग कहानी को उन से कहीं अधिक सशक्त बना देता है। अर्थ और भाव की रक्षा के लिए तथा कहानी में लालित्य पैदा करने के लिए उनका सही प्रयोग अनिवार्य है। हिन्दी के लेखक ने अभी इस ओर बहुत कम ध्यान दिया है।

फिर भी भाषा हो या कला के तत्त्व, लेखक सभी क्षेत्रों में नए-नए प्रयोग करने के लिए स्वतन्त्र है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है उस पर केवल एक ही बन्धन है—उसके साहित्य का जीवन से संबंध न टूटे अर्थात् उसकी कहानी में अनुभूति, अभिव्यक्ति और सहानुभूति तीनों तत्त्व वर्तमान रहें। किसी भी एक का अभाव कला को खंडित करने के लिए यथेष्ट है।

अन्त में हिन्दी कहानी के विकास पर एक दृष्टि डाल लेना अनुपयुक्त न होगा। हिन्दी में कहानी का आरम्भ वैतालपचीसी, सिंहासन बत्तीसी, शुक बहत्तरी आदि अनुदित कहानियों से हुआ माना जाता है। कुछ लोगों का विचार है कि इन्शाअल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' हिन्दी की पहली मौलिक कहानी है। मुसलमानों से सम्पर्क होने के बाद उनके प्रेमाख्यानों ने यहां के साहित्य में जो क्रान्ति पैदा की उसका स्पष्ट प्रभाव इस कहानी पर है। उन्नीसवीं सदी के मध्य में जब छापेखाने का जादू सर पर चढ़ कर बोलने लगा तब इसी परम्परा की कहानियों के संग्रह प्रकाशित हुए। किस्सा तोता मैना, किस्सा साढ़े तीन यार, गुलबकावली कुछ ऐसे ही संग्रह थे जो बड़े चाव से पढ़े जाते थे। इन्शाअल्ला खां के आसपास ही लल्लूलाल ने 'प्रेमसागर', मुन्शी सदासुख ने 'सुखसागर' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की। उन्नीसवीं सदी में ही आगे चलकर राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने 'राजा भोज का सपना' प्रकाशित किया। भारतेन्दु ने स्वयं एक अधूरी कहानी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' लिखी पर इस समय तक कोई मौलिक उल्लेखनीय काम नहीं हुआ। अनुवाद ही बहुत हुए, विशेष कर बंगला से। श्री गोपालराम गहमरी के पत्र 'जासूस' में बंगला से अनुदित छोटी-छोटी जासूसी कहानियां छपा करती थीं।

आधुनिक हिन्दी कहानी का वास्तविक जन्म, अंग्रेजी शिक्षा के व्यापक प्रचार के बाद, बीसवीं सदी के आरम्भ में हुआ। सन् १९०० में 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' का प्रकाशन एक क्रान्तिकारी घटना है। इससे एक वर्ष पूर्व सन् १८९९ में गुणाढ्य की वृहत्कथा के आधार पर कुछ कहानियां 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित हुई परन्तु 'सरस्वती' में अंग्रेजी कथाओं के तथा 'सुदर्शन' में पौराणिक आख्यायिकाओं के नियमित रूप से अनुवाद और रूपान्तर प्रकाशित होने के साथ हिन्दी कहानी क्षेत्र में नया युग शुरू हुआ। जून १९०० ई० की सरस्वती में शेक्सपियर के नाटक 'टेम्पेस्ट' की छाया लेकर लिखी हुई एक कहानी 'इन्दुमती' प्रकाशित हुई। इसके लेखक गोस्वामी किशोरीलालजी थे, कुछ लोग इसे मौलिक कहानी मानते हैं क्योंकि इसका

कथानक और वातावरण बिलकुल भारतीय है। हमारे विचार में इस कहानी को अनुवाद तो किसी भी अवस्था में नहीं कहा जा सकता। तत्कालीन परिस्थितियों में उससे अधिक मौलिक कहानी लिखना शायद सम्भव नहीं था। उस काल के अनुवादकों में अंग्रेजी से अनुवाद करनेवालों में श्री गिरिजाकुमार घोष उपनाम ला० पार्वती नन्दन तथा संस्कृत से अनुवाद करनेवालों में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी प्रमुख थे। मिर्जापुर की श्रीमती बंगमहिला ने भी बंगला से काफी कहानियां अनुदित कीं। सन् १९१० तक यही परीक्षण चलता रहा, इस काल में न कोई निश्चित परम्परा भी न कोई निश्चित आदर्श, पर इस काल के लेखकों में हिन्दी के कुछ महारथियों के नाम सामने आते हैं। प्रसिद्ध आलोचक श्री रामचन्द्र शुक्ल, व्याकरण के विद्वान श्री कामताप्रसाद गुरु, (उपनाम विद्यानाथ शर्मा) आज के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री वृन्दावनलाल वर्मा, श्री माधव मिश्र और श्री गिरिजादत्त बाजपेयी ने इस काल में कहानियां लिखीं। इसी काल में श्री मैथिलीशरण गुप्त की कुछ छन्दबद्ध कहानियां प्रकाशित हुईं। पर इस युग की सबसे महत्त्वपूर्ण कहानी श्रीमती बंग महिला की 'दुलाईवाली' थी। यह मई १९०७ की सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। यह एक सुन्दर यथार्थवादी कहानी है और आज की कहानी के बहुत पास है। परन्तु यह एक घटना बनकर रह गई। सन् १९११ तक कोई इस परम्परा को आगे बढ़ाने वाला आगे नहीं आया। हां, इस वर्ष जब श्री जयशंकर प्रसाद की प्रेरणा से काशी से 'इन्दु' का प्रकाशन शुरू हुआ तो मानो कथा-साहित्य का भाग्योदय हुआ। वर्तमान युग की मौलिक कहानी की अविच्छिन्न धारा बह निकली। सन् १९११ में ही श्री जयशंकरप्रसाद की सर्वप्रथम मौलिक कहानी 'ग्राम' इन्दु में प्रकाशित हुई। इसी वर्ष श्री जी० पी० श्रीवास्तव तथा श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानियाँ 'इन्दु' में छपीं। इस प्रकार आधुनिक कहानी का जन्म १९११ में हुआ। इसके बाद के दस वर्ष हिन्दी कहानी के विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। सन् १९१२ में श्री विश्वम्भरनाथ जिज्जा और सन् १९१३ में श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक का उदय हुआ। 'कौशिक' जी की पहली कहानी 'रक्षाबन्धन' सरस्वती में छपी थी। इसी वर्ष 'इन्दु' में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की कहानी 'कानो का कंगना' छपी। सन् १९१४ में 'सरस्वती' द्वारा श्री ज्वालादत्त शर्मा तथा 'गृह लक्ष्मी' द्वारा श्री चतुरसेन शास्त्री कहानी क्षेत्र में आए। इसी वर्ष श्री बदरीनाथ भट्ट और श्री शिवपूजन सहाय ने लिखना शुरू किया। गुलेरीजी की सुप्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' सन् १९१५ में सरस्वती में

प्रकाशित हुई और सन् १६१६ में श्री प्रेमचन्द के रूप में एक दूसरी ऐसी महान् प्रतिभा का उदय हुआ जिसके प्रकाश से समूचा हिन्दी संसार जगमगा उठा। इसके बाद हिन्दी कहानी द्रुतगति से दौड़ने लगी। सन् १६२० तक रायकृष्णदास तथा श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी (सन् १६१७) श्री बालकृष्णशर्मा नवीन (सन् १६१८) श्री चण्डीप्रसाद हृदयेश तथा श्री गोविन्दवल्लभ पन्त (सन् १६१६) और सुदर्शन (सन् १६२०) जैसे महान् कथाकारों का उदय हो चुका था।

सन् १६२० से सन् १६५० तक के तीस वर्षों में हिन्दी कहानी आदर्शवाद और यथार्थवाद के पथ से आगे बढ़ती हुई आज जीवन-दर्शन बन गई है। मानव जीवन के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के कारण जीवन का कोई भेद उससे छिपा नहीं रहा है। प्रेमचन्द इस कला में बहुत कुशल थे। उनकी परम्परा को आगे बढ़ाने वालों में सर्व श्री जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, विनोदशंकर व्यास, भगवती प्रसाद वाजपेयी तथा इन पंक्तियों के लेखक का नाम लिया जा सकता है। इधर वादों और विचारों के घात-प्रतिघात के कारण जीवन दर्शन को एक विशिष्ट दृष्टिकोण से देखने के कारण आज जो प्रगतिशील नाम की कहानी की एक और धारा चली है उसके प्रमुख लेखकों सर्व श्री यशपाल, पहाड़ी, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, रामवृक्ष बेनीपुरी, अमृतराय, मन्मथनाथ गुप्त तथा रांगेय राघव आदि के नाम लिए जाते हैं। लेकिन यह विभेद रुचिकर नहीं है। सफल कलाकार सदा प्रगतिशील है। सर्व श्री इलाचन्द जोशी, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, उग्र, भगवतीचरण वर्मा, यमुनादत्त वैष्णव, कमलाकान्त वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, कमल जोशी, वीरेन्द्रकुमार, रामचन्द्र तिवारी आदि अनेक सर्वतोमुखी प्रतिभा वाले लेखक हैं जो इस युग का सफल प्रतिनिधित्व करते हैं। हाँ, हिन्दी में हास्यरस की सफल रचना वाले बहुत कम हैं, जो हैं; वे या तो हास्य लिखते हैं या फिर व्यंग लिखकर अपना दिवालियापन घोषित करते हैं। फिर भी सर्व श्री बद्रीनाथ भट्ट, अन्नपूर्णानन्द, बेढ़ब, राधाकृष्ण और अमृतलाल नागर आदि सुलेखकों के नाम इस क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं। श्री श्रीराम शर्मा की शिकार सम्बन्धी कहानियाँ चित्रण की दृष्टि से सजीव हैं। हमारे कुछ कवियों ने भी सफलतापूर्वक कहानी को अपनाया है। उन में सर्व श्री पन्त, निराला, सियारामशरण गुप्त तथा श्री उदयशंकर भट्ट प्रमुख हैं। आजकल तो रेखा-चित्र भी कहानी की परिभाषा के अन्तर्गत आ गए हैं इसलिए श्रीमती महादेवी वर्मा का नाम भी इस श्रेणी के लेखकों में सादर लिया जा सकता है। स्त्री लेखिकाओं में श्रीमती शिवरानी प्रेमचन्द, कमला चौधरी, सुभद्राकुमारी चौहान,

उषादेवी मित्रा, होमवती देवी, सत्यवती मल्लिक, चन्द्रावती और चन्द्रकिरण सौनरेक्सा विशेष उल्लेखनीय हैं। वैसे तो पुराने लेखकों में से श्री वाचस्पति पाठक तथा श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन जैसे कथाकार भी आज मौन हैं परन्तु इस बीच में कुछ और ऐसे उदीयमान लेखक सामने आए थे जिनकी कला में शक्ति थी पर वे दो चार कहानियाँ लिखकर मौन हो गए; श्रीमती माधवी, श्रीमती निर्मला मित्रा, सर्व श्री शांतिप्रसाद वर्मा, रामकृष्ण देव गर्ग, बलराज साहनी, वीरेश्वर, धर्मप्रकाश आनन्द, हरदयाल मौजी कुछ ऐसे नाम हैं जिनसे बहुत आशाएं थीं। इनमें श्री हरदयाल मौजी तो अभावों से संघर्ष करते हुए सदा के लिए मौन हो चुके हैं।

प्रस्तुत संग्रह में सभी प्रकार की कहानियाँ देने का प्रयत्न था पर वह सम्भव नहीं हो सका, पर फिर भी उसे यथाशक्ति प्रतिनिधि संग्रह बनाया गया है। इसलिए पाठकों को उसमें कुछ वे नाम मिलेंगे जो प्रायः कहानी संग्रहों में नहीं मिलते, जैसे राधाकृष्ण, हरदयाल मौजी, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, रांगेयराघव, रामचन्द्र तिवारी और यशपाल जैन। हाँ प्रयत्न करने पर भी कुछ नाम हमें नहीं मिल सके उसका हमें खेद है।

उपरोक्त विवेचन से, यद्यपि वह अधूरा ही है, यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि कहानी साहित्य की प्रगति गर्व के योग्य है। ऊपर सभी नाम नहीं आ पाए हैं परन्तु उनमें से बीस-पच्चीस कलाकार तो निस्सन्देह ऐसे हैं जिनकी रचनाएं विश्व साहित्य की स्थायी निधि बन सकती है। इसके अतिरिक्त दूसरी अनेक नवोदित प्रतिभाएँ तीव्र गति से आगे बढ़ रही हैं। साहित्य की इन आशा किरणों को देखते हुए भविष्य की उज्ज्वलता में विश्वास होता है।

पो० बा० ११६७
दिल्ली
ता० ११ मई, १९५१

—विष्णु प्रभाकर

विषय-सूची

: १ :

बड़े भाईसाहब

मेरे भाई मुझसे पाँच साल बड़े थे; लेकिन केवल तीन दर्जे आगे। उन्होंने भी उसी उम्र में पढ़ना शुरू किया था, जिसमें मैंने शुरू किया, लेकिन तालीम जैसे महत्त्व के मामले में वह जल्दीबाज़ी से काम लेना पसन्द न करते थे। इस भवन की बुनियाद खूब मज़बूत डालनी चाहते थे, जिसपर आलीशान महल बन सके। एक साल का काम दो साल में करते थे। कभी-कभी तीन साल भी लग जाते थे। बुनियाद ही पुख़्ता न हो, तो मकान कैसे पायेदार बने।

मैं छोटा था, वह बड़े थे। मेरे उम्र नौ साल की, वह चौदह साल के थे। उन्हें मेरी तम्बीह और निगरानी का पूरा और जन्मसिद्ध अधिकार था। और मेरी शालीनता इसी में थी कि उनके हुक्म को कानून समझूं।

वह स्वभाव से बड़े अध्ययन-शील थे। हरदम किताब खोले बैठे रहते। और शायद दिमाग़ को आराम देने के लिए कभी कापी पर कभी किताब के हाशियों पर चिड़ियों, कुत्तों, बिल्लियों की तस्वीरें बनाया करते थे। कभी-कभी एक ही नाम या शब्द या वाक्य दस-बीस बार लिख डालते। कभी एक शेर को बार-बार सुन्दर अक्षरों में नक़ल करते। कभी ऐसी शब्द-रचना करते, जिसमें न कोई अर्थ होता न कोई सामंजस्य। मसलन एक बार उनकी कापी पर मैंने यह इबारत देखी—स्पैशल, अमीना, भाइयो-भाइयो, दर-असल, भाई-भाई, राधेश्याम, श्रीयुत् राधेश्याम, एक घण्टे तक—इसके बाद एक आदमी का चेहरा बना हुआ था। मैंने बहुत चेष्टा की कि इस पहेली का कोई अर्थ निकालूं; लेकिन असफल रहा। और उनसे पूछने का साहस न हुआ। वह नवीं जमात में थे, मैं पाँचवीं में। उनकी रचनाओं को समझना मेरे लिए छोटा मुंह बड़ी बात थी।

मेरा जी पढ़ने में बिलकुल न लगता था। एक घण्टा भी किताब लेकर बैठना

पहाड़ था। मौक़ा पाते ही होस्टल से निकलकर मैदान में आ जाता, और कभी कंकरियां उछालता, कभी कागज़ की तितलियां उड़ाता, और कहीं कोई साथी मिल गया, तो पूछना ही क्या। कभी चारदीवारी पर चढ़कर नीचे कूद रहे हैं, कभी फाटक पर सवार, उसे आगे-पीछे चलाते हुए मोटर कार का आनन्द उठा रहे हैं, लेकिन कमरे में आते ही भाईसाहब का वह रुद्र-रूप देखकर प्राण सूख जाते। उनका पहला सवाल होता—कहां थे ? हमेशा यही सवाल, इसी ध्वनि में हमेशा पूछा जाता था और इसका जवाब मेरे पास केवल मौन था। न जाने मेरे मुंह से यह बात क्यों न निकलती कि ज़रा बाहर खेल रहा था। मेरा मौन कह देता था कि मेरा अपराध स्वीकार है। और भाईसाहब के लिए इसके सिवा और कोई इलाज न था कि स्नेह और रोष से मिले हुए शब्दों में मेरा सत्कार करें :—

"इस तरह अंग्रेज़ी पढ़ोगे, तो ज़िन्दगी भर पढ़ते रहोगे और एक हर्फ़ न आएगा। अंग्रेज़ी पढ़ना कोई हँसी-खेल नहीं है कि जो चाहे पढ़ ले; नहीं तो ऐरा-गैरा, नत्थू खैरा सभी अंग्रेज़ी के विद्वान् हो जाते। यहां रात-दिन आंखें फोड़नी पड़ती हैं, और खून जलाना पड़ता है, तब कहीं यह विद्या आती है। और आती क्या है, हां, कहने को आ जाती है। बड़े-बड़े विद्वान् भी शुद्ध अंग्रेज़ी नहीं लिख सकते, बोलना तो दूर रहा। और मैं कहता हूं, तुम कितने घोंघा हो कि देखकर भी सबक नहीं लेते। मैं कितनी मेहनत करता हूँ, यह तुम अपनी आंखों देखते हो, अगर नहीं देखते, तो यह तुम्हारी आंखों का कसूर है, तुम्हारी बुद्धि का कसूर है। इतने मेले-तमाशे होते हैं, मुझे तुमने कभी देखने जाते देखा है ? रोज़ ही क्रिकेट और हाक़ी मैच होते हैं मैं पास नहीं फटकता। हमेशा पढ़ता रहता हूं, उसपर भी एक-एक दर्जे में दो-दो, तीन-तीन साल पड़ा रहता हूँ, फिर तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यों खेल-कूद में वक्त गँवाकर पास हो जाओगे ? मुझे तो दो ही तीन साल लगते हैं; तुम उम्र भर इसी दर्जे में पड़े सड़ते रहोगे। अगर तुम्हें इस तरह उम्र गँवानी है, तो बेहतर है, घर चले जाओ और मज़े से गुल्ली-डण्डा खेलो। दादा की गाढ़ी कमाई के रुपये क्यों बरबाद करते हो ?"

मैं यह लताड़ सुनकर आंसू बहाने लगता। जवाब ही क्या था। अपराध तो मैंने किया, लताड़ कौन सहे ? भाईसाहब उपदेश की कला में निपुण थे। ऐसी-ऐसी लगती बातें कहते, ऐसे-ऐसे सूक्ति-वाण चलाते, कि मेरे जिगर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते और हिम्मत टूट जाती। इस तरह जान तोड़कर मेहनत करने की शक्ति मैं अपने में न

पाता था । और उस निराशा में ज़रा देर के लिए मैं सोचने लगता—क्यों न घर चला जाऊँ । जो काम मेरे बूते के बाहर है, उसमें हाथ डालकर क्यों अपनी जिन्दगी ख़राग करूँ ? मुझे मूर्ख रहना मंजूर था लेकिन उतनी मेहनत ! मुझे तो चक्कर आ जाता था, लेकिन घण्टे-दो घण्टे के बाद निराशा के बादल फट जाते और मैं इरादा करता कि आगे से खूब जी लगाकर पढ़ूंगा । चटपट एक टाइम-टेबुल बना डालता । बिना पहले से नक़शा बनाए, कोई स्कीम तैयार किए काम कैसे शुरू करूँ ? टाइम-टेबुल में खेल-कूद की मद बिलकुल उड़ जाती । प्रातःकाल उठना, छः बजे हाथ-मुंह धो, नाश्ता कर पढ़ने बैठ जाना, छः से आठ तक अंग्रेज़ी, आठ से नौ तक हिसाब, नौ से साढ़े नौ तक इतिहास, फिर भोजन और स्कूल । साढ़े तीन बजे स्कूल से वापस होकर आधा घण्टा आराम, चार से पांच तक भूगोल, पांच से छः तक ग्रामर, आधा घण्टा होस्टल के सामने ही टहलना, साढ़े छः से सात तक अंग्रेज़ी कम्पोज़ीशन, फिर भोजन करके आठ से नौ तक अनुवाद, नौ से दस तक हिन्दी, दस से ग्यारह तक विविध-विषय, फिर विश्राम ।

मगर टाइम-टेबुल बना लेना एक बात है, उसपर अमल करना दूसरी बात । पहले ही दिन से उसकी अवहेलना शरू हो जाती । मैदान की वह सुखद हरियाली, हवा के वह हलके-हलके झोंके, फुट-बाल की वह उछल-कूद, कबड्डी के वह दांव-घात, वॉली-बाल की वह तेज़ी और फुर्ती मुझे अज्ञात और अनिवार्य रूप से खींच ले जाती और वहां जाते ही मैं सब कुछ भूल जाता । वह जान-लेवा टाइम-टेबुल, वह आँख-फोड़ पुस्तकें, किसी को याद न रहतीं, और फिर भाई-साहब को नसीहत और फ़ज़ीहत का अवसर मिल जाता । उनके साये से भागता, उनकी आँखों से दूर रहने की चेष्टा करता, कमरे में इस तरह दबे पाँव आता कि उन्हें ख़बर न हो ! उनकी नज़र मेरी ओर उठी और मेरे प्राण निकले । हमेशा सिर पर एक नंगी तलवार-सी लटकती मालूम होती । फिर भी जैसे मौत और विपत्ति के बीच में भी आदमी मोह और माया के बन्धन में जकड़ा रहता है, मैं फटकार और घुड़कियां खाकर भी खेल-कूद का तिरस्कार न कर सकता ।

(२)

सालाना इम्तहान हुआ । भाईसाहब फेल हो गये, मैं पास हो गया और दर्जे में प्रथम आया । मेरे और उनके बीच में केवल दो साल का अन्तर रह गया । जी में आया, भाई साहब को आड़े हाथों लूँ—आपकी वह घोर तपस्या कहां गई ? मुझे

देखिए, मज़े से खेलता भी रहा और दर्जे में अव्वल भी हूँ। लेकिन वे इतने दुखी और उदास थे कि मुझे उनसे दिली हमदर्दी हुई और उनके घाव पर नमक छिड़कने का विचार ही लज्जास्पद जान पड़ा। हां, अब अपने ऊपर मुझे कुछ अभिमान हुआ और आत्माभिमान भी बढ़ा। भाईसाहब का रोब मुझपर न रहा। आज़ादी से खेल-कूद में शरीक होने लगा। दिल मज़बूत था। अगर उन्होंने फिर मेरी फ़ज़ीहत की, तो साफ कह दूँगा—आपने अपना खून जलाकर कौन-सा तीर मार लिया। मैं तो खेलते-कूदते दर्जे में अव्वल आ गया। ज़बान से वह हेकड़ी जताने का साहस न होने पर भी मेरे रंग-ढंग से साफ़ ज़ाहिर होता था कि भाई साहब का वह आतंक मुझपर नहीं है। भाई साहब ने इसे भांप लिया-उनकी सहज बुद्धि बड़ी तीव्र थी और एक दिन जब मैं भोर का सारा समय गुल्ली-डण्डे की भेंट करके ठीक भोजन के समय लौटा तो भाईसाहब ने मानो तलवार खींच ली और मुझपर टूट पड़े—देखता हूं कि इस साल पास हो गए और दर्जे में अव्वल आ गए, तो तुम्हें दिमाग़ हो गया है; मगर भाई जान, घमंड तो बड़े-बड़ों का नहीं रहा, तुम्हारी क्या हस्ती है! इतिहास में रावण का हाल तो पढ़ा ही होगा। उसके चरित्र से तुमने कौन-सा उपदेश लिया? या योंही पढ़ गये? महज़ इम्तहान पास कर लेना कोई चीज़ नहीं, असल चीज़ है बुद्धि का विकास। जो कुछ पढ़ो उसका अभिप्राय समझो। रावण भूमण्डल का स्वामी था। ऐसे राजों को चक्रवर्ती कहते हैं। आज-कल अंग्रेज़ों के राज्य का विस्तार बिलकुल बढ़ा हुआ है, पर इन्हें चक्रवर्ती नहीं कह सकते। संसार में अनेकों राष्ट्र अंग्रेज़ों का आधिपत्य स्वीकार नहीं करते। बिलकुल स्वाधीन हैं। रावण चक्रवर्ती राजा था, संसार के सभी महीप उसे कर देते थे। बड़े-बड़े देवता उसकी गुलामी करते थे। आग और पानी के देवता भी उसके दास थे, मगर उसका अन्त क्या हुआ? घमण्ड ने उसका नाम-निशान तक मिटा दिया, कोई उसे एक चुल्लू पानी देने वाला भी न बचा। आदमी और जो कुकर्म चाहे करे, पर अभिमान न करे, इतराए नहीं। अभिमान किया और दीन-दुनिया दोनों से गया। शैतान का हाल भी पढ़ा ही होगा। उसे यह अभिमान हुआ कि ईश्वर का उससे बढ़कर सच्चा भक्त कोई है ही नहीं। अन्त में यह हुआ कि स्वर्ग से नर्क में ढकेल दिया गया। शाहे रूम ने भी एक बार अहंकर किया था। भीख मांग-मांगकर मर गया। तुमने अभी केवल एक दर्जा पास किया है, और अभी तुम्हारा सिर फिर गया, तब तो तुम आगे बढ़ चुके। यह समझ लो कि तुम अपनी मेहनत से नहीं पास हुए, अंधे के हाथ बटेर लग गई। मगर बटेर

केवल एक बार हाथ लग सकती है, बार-बार नहीं लग सकती । कभी-कभी गुल्ली-डण्डे में भी अन्धा-चोट निशाना पड़ जाता है । इससे कोई सफल खिलाड़ी नहीं हो जाता । सफल खिलाड़ी वह है जिसका कोई निशाना खाली न जाय । मेरे फेल होने पर मत जाओ । मेरे दर्जे में आओगे, तो दाँतों पसीना जाएगा, जब अलजबरा और जॉमेट्री के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे, और इंगलिस्तान का इतिहास पढ़ना पड़ेगा । बादशाहों के नाम याद रखना आसान नहीं । आठ-आठ हेनरी हो गुज़रे हैं । कौन-सा काण्ड किस हेनरी के समय में हुआ, क्या यह याद कर लेना आसान समझते हो ? हेनरी सातवें की जगह हेनरी आठवां लिखा और सब नम्बर ग़ायब ! सफ़ाचट ! सिफ़र भी न मिलेगा सिफ़र भी ! हो किस ख्याल में ? दरजनों तो जेम्स हुए हैं, दरजनों विलियम, कोड़ियों चार्ल्स ! दिमाग़ चक्कर खाने लगता है । आंधी रोग हो जाता है । इन अभागों को नाम भी न जुड़ते थे । एक ही नाम के पीछे दोयम, सोयम, चहारम, पंचम लगाते चले गए । मुझसे पूछते तो दस लाख नाम बतला देता । जॉमेट्री तो बस खुदा की पनाह ! अ ब ज की जगह अ ज ब लिख दिया तो सारे नम्बर कट गए । कोई इन निर्दयी मुमतहिनों से नहीं पूछता कि आखिर अ ब ज और अ ज ब में क्या फ़र्क है । और व्यर्थ की बात के लिए क्यों छात्रों का खून करते हैं ? दाल-भात-रोटी खाई या भात-दाल-रोटी खाई, इसमें क्या रखा है, मगर इन परीक्षकों को क्या परवाह, वह तो वही देखते हैं जो पुस्तक में लिखा रहता है । चाहते हैं कि लड़के अक्षर-अक्षर रट डालें । और इसी रटन्त का नाम शिक्षा रख छोड़ा है, और आखिर इन बे-सिर पैर की बातों के पढ़ने से फायदा ? इस रेखा पर वह लम्ब गिरा दो, तो आधार लम्ब से दुगुना होगा । पूछिए इससे प्रयोजन ? दुगुना नहीं चौगुना हो जाय, या आधा ही रहे, मेरी बला से; लेकिन परीक्षा में पास होना है, तो यह सब खुराफ़ात याद करनी पड़ेंगी । कह दिया--'समय की पाबन्दी' पर एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो । अब आप कापी सामने खोलें, कलम हाथ में लिये, उसके नाम को रोइए । कौन नहीं जानता कि समय की पाबन्दी बहुत अच्छी बात है, इससे आदमी के जीवन में संयम आ जाता है, दूसरों का उसपर स्नेह होने लगता है और उसके कारोबार में उन्नति होती है, लेकिन इस ज़रा-सी बात पर चार पन्ने कैसे लिखें ? जो बात एक वाक्य में कही जा सके, उसे चार पन्नों में लिखने की ज़रूरत ? मैं तो इसे हिमाक़त कहता हूं । यह तो समय की किफ़ायत नहीं, बल्कि उसका दुरूपयोग है कि व्यर्थ में किसी बात को ठूंस दिया जाय । हम चाहते हैं आदमी

को जो कुछ कहना हो, चटपट कह दे और अपनी राह ले, मगर नहीं, आपको चार पन्ने रंगने पड़ेंगे, चाहे जैसे लिखिए । और पन्ने भी पूरे फुलस्केप के आकार के ! यह छात्रों पर अत्याचार नहीं तो और क्या है ? अनर्थ तो यह है कि कहा जाता है कि संक्षेप में लिखो 'समय की पाबन्दी' पर संक्षेप में एक नोट लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो । ठीक संक्षेप में तो चार पन्ने हुए, नहीं शायद सौ-दो-सौ पन्ने लिखवाते । तेज़ भी दौड़िए और धीरे भी । है उल्टी बात या नहीं ? बालक भी इतनी-सी बात समझ सकता है; लेकिन इन अध्यापकों को इतनी तमीज़ भी नहीं । उसपर दावा है कि हम अध्यापक हैं । मेरे दर्जे में आओगे लाला तो ये सारे पापड़ बेलने पड़ेंगे, और तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा । इस दर्जे में अव्वल आ गए, तो ज़मीन पर पांव नहीं रखते । इसलिए मेरा कहना मानिए । लाख फेल हो गया हूं, लेकिन तुमसे बड़ा हूं, संसार का मुझे तुमसे ज़्यादा अनुभव है । जो कुछ कहता हूं उसे गिरह बांधिए, नहीं तो पछताइएगा ।"

स्कूल का समय निकट था, नहीं ईश्वर जाने यह उपदेश-माला कब समाप्त होती । भोजन आज मुझे निस्स्वादु-सा लग रहा था । जब पास होने पर यह तिरस्कार हो रहा है, तो फेल हो जाने पर तो शायद प्राण ही ले लिए ज़ांय । भाई साहब ने अपने दर्जे की पढ़ाई का जो भयंकर चित्र खींचा था, उसने मुझे भयभीत कर दिया । कैसे स्कूल छोड़कर घर नहीं भागा, यही ताज्जुब है; लेकिन इतने तिरस्कार पर भी पुस्तकों में मेरी अरुचि ज्यों-की-त्यों बनी रही । खेल-कूद का कोई अवसर हाथ से जाने न देता । पढ़ता भी था; मगर बहुत कम, बस इतना कि रोज़ का स्टाक पूरा हो जाय और दर्जे में ज़लील न होना पड़े । अपने ऊपर जो विश्वास पैदा हुआ था, वह फिर लुप्त हो गया, और फिर चोरों का-सा जीवन कटने लगा ।

(३)

फिर सालाना इम्तहान हुआ, और कुछ ऐसा संयोग हुआ कि मैं फिर पास हुआ और भाईसाहब फिर फ़ेल हो गये । मैंने बहुत मेहनत नहीं की; पर न जाने कैसे दर्जे में अव्वल आ गया । मुझे खुद अचरज हुआ । भाई साहब ने प्राणांतक परिश्रम किया था । कोर्स का एक-एक शब्द चाट गए थे । दस बजे रात तक इधर, चार बजे भोर से उधर, छः से साढ़े नौ तक स्कूल जाने के पहले । मुद्रा कान्तिहीन हो गई थी, मगर बेचारे फ़ेल हो गए । मुझे उनपर दया आती थी । नतीजा सुनाया गया तो वह रो

पड़े और मैं भी रोने लगा। अपने पास होने की खुशी आधी हो गई। मैं भी फेल हो गया तो भाई साहब को इतना दुःख न होता; लेकिन विधि की बात कौन टाले ?

मेरे और भाई साहब के बीच में अब केवल एक दर्जे का अन्तर और रह गया। मेरे मन में एक कुटिल भावना और उदय हुई कि कहीं भाई-साहब एक साल और फ़ेल हो जायं, तो मैं उनके बराबर हो जाऊँ, फिर वह किस आधार पर मेरी फज़ीहत कर सकेंगे; लेकिन मैंने इस कमीने विचार को दिल से बल-पूर्वक निकाल डाला। आखिर वह मुझे मेरे हित के विचार से ही तो डांटते हैं। मुझे इस वक्त अप्रिय लगता है अवश्य, मगर यह शायद उनके उपदेशों का ही असर हो कि मैं दनादन पास हो जाता हूँ और इतने अच्छे नम्बरों से। अब की भाईसाहब बहुत कुछ नर्म पड़ गए थे। कई बार मुझे डांटने का अवसर पाकर भी उन्होंने धीरज से काम लिया, शायद अब वह खुद समझने लगे थे कि मुझे डाँटने का अधिकार उन्हें नहीं रहा था, या रहा तो बहुत कम। मेरी स्वच्छन्दता भी बढ़ी, मैं उनकी सहिष्णुता का अनुचित लाभ उठाने लगा। मुझे कुछ ऐसी धारणा हुई कि मैं तो पास हो ही जाऊँगा पढ़ूं या न पढ़ूं , मेरी तक़दीर बलवान है; इसलिए भाई साहब के डर से जो थोड़ा बहुत पढ़ लिया करता था, वह भी बन्द हुआ। मुझे कनकौए उड़ाने का नया शौक़ पैदा हो गया था, और अब सारा समय पतंग-बाज़ी ही की भेंट होता था; फिर भी मैं भाईसाहब का अदब करता था, और उनकी आंख बचाकर कनकौए उड़ाता था। माँझा देना, कने बांधना, पतंग टूरनामेंट की तैयारियाँ आदि समस्याएँ सब गुप्त रूप से हल की जाती थीं। मैं भाईसाहब को यह सन्देह न करने देना चाहता था कि उनका सम्मान और लिहाज़ मेरी नज़रों में कम हो गया है।

एक दिन सन्ध्या समय होटल से दूर मैं एक कनकौवा लूटने बेतहाशा दौड़ा जा रहा था। आँखें आसमान की ओर थीं और मन उस आकाशगामी पथिक की ओर, जो मन्द गति से झूमता पतन की ओर चला आ रहा था, मानो कोई आत्मा स्वर्ग से निकलकर विरक्त मन से नये संस्कार ग्रहण करने जा रही हो। बालकों की एक पूरी सेना लम्बे और झाड़दार बांस लिए उनका स्वागत करने को दौड़ी आ रही थी। किसी को अपने आगे-पीछे की ख़बर न थी, सभी मानों उस पतंग के साथ ही आकाश में उड़ रहे थे, जहाँ सब कुछ समतल है; न मोटर कारें हैं, न ट्राम न गाड़ियां।

सहसा भाईसाहब से मेरी मुठभेड़ हो गई, जो शायद बाज़ार से लौट रहे थे। उन्होंने वहीं मेरा हाथ पकड़ लिया और उग्र भाव से बोले—"इन बाज़ारी लौंडों के

साथ धेले के कनकौवे के लिए दौड़ते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती ? तुम्हें इसका भी कुछ लिहाज़ नहीं कि अब नीची जमात में नहीं हो; बल्कि आठवीं जमाअत में आ गए हो और मुझसे केवल एक दर्जा नीचे हो । आखिर आदमी को कुछ तो अपनी पोज़ीशन का ख्याल करना चाहिए । एक ज़माना था कि लोग आठवां दर्जा पास करके नायब-तहसीलदार हो जाते थे । मैं कितने ही मिडिलचियों को जानता हूं, जो आज अव्वल दर्जे के डिप्टी-मजिस्ट्रेट या सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं । कितने ही आठवीं जमाअत वाले हमारे लीडर और समाचार-पत्रों के सम्पादक हैं । बड़े-बड़े विद्वान् उनकी मातहती में काम करते हैं और तुम उसी आठवें दर्जे में आकर बाज़ारी लौंडों के साथ कनकौए के लिए दौड़ रहे हो । मुझे तुम्हारी इस कमअकली पर दुःख होता है । तुम ज़हीन हो, इसमें शक़ नहीं । लेकिन वह ज़हन किस काम का, जो हमारे आत्मगौरव की हत्या कर डाले, तुम अपने दिल में समझते होगे कि मैं भाईसाहब से महज़ एक दर्जा नीचे हूं, और अब उन्हें मुझको कुछ कहने का हक़ नहीं है; लेकिन यह तुम्हारी गलती है । मैं तुमसे पांच साल बड़ा हूं और चाहे आज तुम मेरी ही जमाअत में आ जाओ— और परीक्षकों का यही हाल है, तो निस्सन्देह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे, और शायद एक साल बाद मुझसे आगे भी निकल जाओ—लेकिन मुझमें और तुममें तो पांच साल का अन्तर है,उसे तुम क्या, खुदा भी नहीं मिटा सकता । मैं तुमसे पांच साल बड़ा हूं और हमेशा रहूंगा । मुझे दुनिया का और जिन्दगी का जो तजरबा है, तुम उसकी बराबरी नहीं कर सकते, चाहे तुम एम० ए० और डी० लिट और डी० फिल० ही क्यों न हो जाओ । समझ किताबें पढ़ने से नहीं आती, दुनिया देखने से आती है । हमारी मां ने कोई दर्जा नहीं पास किया और दादा भी शायद पांचवीं-छठी जमाअत के आगे नहीं गये, लेकिन हम दोनों चाहे सारी दुनिया की विद्या पढ़ लें, अम्मा और दादा को हमें समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा । केवल इसलिए नहीं कि वे हमारे जन्मदाता हैं बल्कि इसलिए कि उन्हें दुनिया का इससे ज्यादा तजरबा है और रहेगा । अमेरिका में किस तरह की राज-व्यवस्था है, और आठवें हेनरी ने कितने ब्याह किए और आकाश में कितने नक्षत्र हैं, यह बातें चाहे उन्हें न मालूम हों; लेकिन हज़ारों ऐसी बातें हैं, जिनका ज्ञान उन्हें हमसे और तुमसे ज्यादा है । दैव न करे, आज मैं बीमार हो जाऊँ, तो तुम्हारे हाथ-पांव फूल जायेंगे । दादा को तार देने के सिवाय तुम्हें और कुछ न सूझेगा; लेकिन तुम्हारी जगह दादा हों, तो किसी को तार न दें, न घबराएँ, न बदहवास हों । पहले खुद मर्ज़ पहचान कर इलाज

करेंगे, उसमें सफल न हुए, तो किसी डाक्टर को बुलाएँगे। बीमारी तो खैर बड़ी चीज़ है, हम-तुम तो इतना भी नहीं जानते कि महीने भर का खर्च महीना-भर कैसे चले। जो कुछ दादा भेजते हैं, उसे हम बीस-बाईस दिन तक खर्च डालते हैं, और फिर पैसे-पैसे को मुहताज हो जाते हैं। नाश्ता बन्द हो जाता है, धोबी और नाई से मुँह चुराने लगते हैं; लेकिन जितना आज हम और तुम खर्च कर रहे हैं उसके आधे में दादा ने अपनी उम्र का बड़ा भाग इज़्ज़त और नेकनामी के साथ निभाया है और एक कुटुम्ब का पालन किया है जिसमें सब मिलाकर नौ आदमी थे। अपने हेडमास्टरसाहब ही को देखो, एम० ए० हैं कि नहीं; और यहाँ के एम० ए० नहीं, आक्सफ़ोर्ड के। एक हज़ार रुपये पाते हैं, लेकिन उनके घर का इन्तज़ाम कौन करता है ? उनकी बूढ़ी मां। हेडमास्टरसाहब की डिग्री यहाँ बेकार हो गई। पहले खुद घर का इन्तज़ाम करते थे। खर्च पूरा न पड़ता था, कर्ज़दार रहते थे। जबसे उनकी माताजी ने प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया है, जैसे घर में लक्ष्मी आ गई है। तो भाईजान, यह ग़रूर दिल से निकाल डालो कि तुम मेरे समीप आ गए हो, और अब स्वतन्त्र हो। मेरे देखते तुम बेराह न चलने पाओगे। अगर तुम यों न मानोगे तो मैं (थप्पड़ दिखा कर) इसका प्रयोग भी कर सकता हूं। मैं जानता हूं, तुम्हें मेरी बातें ज़हर लग रही है।"

मैं उनकी इस नयी युक्ति से नतमस्तक हो गया। मुझे आज सचमुच अपनी लघुता का अनुभव हुआ और भाईसाहब के प्रति मेरे मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैंने सजल आंखों से कहा—हरगिज़ नहीं। आप जो कुछ फरमा रहे हैं, वह बिलकुल सच है, और आपको उसके कहने का अधिकार है।

भाईसाहब ने मुझे गले लगा लिया और बोले—मैं कनकौवे उड़ाने को मना नहीं करता। मेरा जी भी ललचाता है, लेकिन करूँ क्या, खुद बेराह चलूं, तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ ? यह कर्तव्य भी तो मेरे सिर है।

संयोग से उसी वक्त एक कटा हुआ कनकौवा हमारे ऊपर से गुज़रा। उसकी डोर लटक रही थी। लड़कों का एक गोल पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था। भाईसाहब लम्बे हैं ही, उछलकर उसकी डोर पकड़ ली और बेतहाशा होस्टल की तरफ़ दौड़े। मैं पीछे-पीछे दौड़ रहा था।

○

: २ :

मधुआ

"आज सात दिन हो गए, पीने की कौन कहे, छुआ तक नहीं । आज सातवां दिन है सरकार !"

"तुम झूठे हो । अभी तो तुम्हारे कपड़े से महक आ रही है ।"

"वह........वह तो कई दिन हुए । सात दिन से ऊपर--कई दिन हुए--अंधेरे में बोतल उड़ेलने लगा था । कपड़े पर गिर जाने से नशा भी न आया । और आप को कहने का .....क्या कहूं....सच मानिए । सात दिन--ठीक सात दिन से एक बूंद भी नहीं ।"

ठाकुर सरदारसिंह हँसने लगे । लखनऊ में लड़का पढ़ता था । ठाकुरसाहब भी कभी-कभी वहीं आ जाते । उनको कहानी सुनने का चसका था । खोजने पर यही शराबी मिला । वह रात को, दोपहर में, कभी-कभी सवेरे भी आ जाते । अपनी लच्छेदार कहानी सुनाकर ठाकुर का मनोविनोद करता ।

ठाकुर ने हँसते हुए कहा--"तो आज पियोगे 'न ?"

"झूठ कैसे कहूं । आज तो जितना मिलेगा, सबको पिऊंगा । सात दिन चने-चबेने पर बिताए किस लिए ?"

अद्‌भुत ! सात दिन पेट काटकर, आज अच्छा भोजन न करके तुम्हें पीने की सूझी है !....यह भी....'

"सरकार ! मौज-बहार की एक घड़ी, एक लम्बे दुःख पूर्ण जीवन से अच्छी है । उसकी खुमारी में रूखे दिन काट लिये जा सकते हैं ।"

"अच्छा आज दिन भर तुमने क्या क्या किया है ?"

"मैंने ? अच्छा सुनिये—सवेरे कुहरा पड़ता था, मेरे धुआं से कम्बल-सा वह भी सूर्य के चारों ओर लिपटा था । हम दोनों मुंह छिपाये पड़े थे ।"

ठाकुरसाहब ने हँसकर कहा—"अच्छा तो इस मुंह छिपाने का कोई कारण ?"

"सात दिन से एक बूंद भी गले न उतरी थी। भला मैं कैसे मुंह दिखा सकता था ? और जब बारह बजे धूप निकली, तो फिर लाचारी थी। उठा, हाथ-मुंह धोने में जो दुःख हुआ सरकार, वह क्या कहने की बात है ! पास में पैसे बचे थे। चना चबाने से दांत भाग रहे थे। कट-कटी लग रही थी। पराठे वाले के यहां पहुंचा, धीरे-धीरे खाता रहा और अपने को सेंकता रहा। फिर गोमती-किनारे चला गया। घूमते-घूमते अंधेरा हो गया, बूंदें पड़ने लगीं। तब कहीं भागा और आपके पास आ गया।"

"अच्छा जो उस दिन तुमने गड़रिये वाली कहानी सुनाई थी, जिसमें आसफ़उद्दौला ने उस लड़की का आंचल, भुने हुए भुट्टों के दानों के बदले, मोतियों से भर दिया था, वह क्या सच है ?"

"सच ! अरे वह ग़रीब लड़की भूख से उसे चबाकर थू-थू करने लगी। ... .रोने लगी। ऐसी निर्दय दिल्लगी बड़े लोग कर ही बैठते हैं। सुना है, श्री रामचन्द्र ने भी हनुमानजी से ऐसी ही..."

ठाकुरसाहब ठठाकर हँसने लगे। पेट पकड़कर हँसते-हँसते लोट गये। सांस बटोरते हुए संभल कर बोले--और बड़प्पन कहते किसे हैं ? कंगाल तो कंगाल ! गधी लड़की ! भला उसने कभी मोती देखे थे, चबाने लगी होगी। मैं सच कहता हूं, आज तक तुमने जितनी कहानियां सुनाई, सबमें बड़ी टीस थी। शाहज़ादों के दुखड़े, रंग-महल की अभागिन बेग़मों के निष्फल प्रेम, करुण कथा और पीड़ा से भरी हुई कहानियां ही तुम्हें आती हैं; पर ऐसी हँसाने वाली कहानी और सुनाओ, तो मैं तुम्हें अपने सामने ही बढ़िया शराब पिला सकता हूँ।"

"सरकार ! बूढ़ों से सुने हुए वे नवाबी के सोने-से दिन ! अमीरों की रंग-रेलियां ! दुखियों की दर्द भरी आहें ! रंग-महलों में घुल-घुल कर मरने वाली बेग़में अपने आप सिर में चक्कर काटती रहती हैं। मैं उनकी पीड़ा से रोने लगता हूँ। अमीर कंग़ाल हो जाते हैं। बड़े-बड़े घमण्ड चूर होकर धूल में मिल जाते हैं। तब भी दुनिया बड़ी पागल है। मैं उसको, पागलपन को भूलने के लिए शराब पीने लगता हूं--सरकार ! नहीं तो यह बुरी बला कौन अपने गले लगाता !"

ठाकुर साहब ऊँघने लगे थे। अंगीठी में कोयला दहक रहा था। शराबी सरदी से ठिठुरा जा रहा था। वह हाथ सेंकने लगा। सहसा नींद में चौंककर ठाकुर साहब

ने कहा—

"अच्छा जाओ, नींद लग रही है। वह देखो एक रुपया पड़ा है, उठा लो। लल्लू को भेजते जाओ।"

शराबी रुपया उठाकर धीरे से खिसका। लल्लू था ठाकुर साहब का जमादार। उसे खोजते हुए जब वह फाटक पर की बगल वाली कोठरी के पास पहुँचा, तो उसे सुकुमार कंठ से सिसकने का शब्द सुनाई पड़ा। वह खड़ा होकर सुनने लगा।

'तो सूअर! रोता क्यों है? कुंअर साहब ने दो ही लात न लगाई हैं? कुछ गोली तो नहीं मार दी?"

कर्कश स्वर से लल्लू बोल रहा था, किन्तु उत्तर में सिसकियों के साथ एकाध हिचकी ही सुनाई पड़ जाती थी। अब और भी कठोरता से लल्लू ने कहा— "मधुआ! जा सो रह! नखरा न कर, नहीं तो उठूँगा तो खाल उधेड़ दूँगा। समझा न?"

शराबी चुपचाप सुन रहा था। बालक की सिसकी और बढ़ने लगी। फिर उसे सुनाई पड़ा—"ले, अब भागता है कि नहीं! क्यों मार खाने पर तुला है?"

भयभीत बालक बाहर चला आ रहा था। शराबी ने उसके छोटे-से सुन्दर गोरे मुँह को देखा। आंसू की बूंदें ढुलक रही थीं। बड़े दुलार से उसका मुंह पोंछते हुए उसे लेकर वह फाटक के बाहर चला आया। दस बज रहे थे। कड़ाके की सर्दी थी। दोनों चुपचाप चलने लगे। शराबी की मौन सहानुभूति को उस छोटे-से सरल हृदय ने स्वीकार कर लिया। वह चुप हो गया। अभी वह एक तंग गली पर रुका ही था कि बालक के फिर से सिसकने की उसे आहट लगी। वह झिड़क कर बोल उठा--

"अब क्यों रोता है रे छोकरे?"

"मैंने दिन-भर से कुछ खाया नहीं।"

"कुछ खाया नहीं; इतने बड़े अमीर के यहाँ रहता है और दिन-भर तुझे खाने को नहीं मिला?

"यही तो मैं कहने गया था जमादार के पास; मार तो रोज ही खाता हूँ। आज तो खाना ही नहीं मिला। कुँवरसाहब का ओवर-कोट लिए खेल में दिन-भर साथ रहा। सात बजे लौटा, तो और भी नौ बजे तक कुछ काम करना पड़ा। आटा रख नहीं सका था। रोटी बनती तो कैसे। जमादार से कहने गया था।"

भूख की बात कहते-कहते बालक के ऊपर उसकी दीनता और भूख ने एक साथ ही जैसे आक्रमण कर दिया । वह फिर हिचकियाँ लेने लगा ।

शराबी उसका हाथ पकड़कर घसीटता हुआ गली में ले चला । एक गन्दी कोठरी का दरवाज़ा ढकेल कर बालक को लिए हुए वह भीतर पहुँचा । टटोलते हुए सलाई से मिट्टी की ढ़ेबरी जला कर वह फटे कम्बल के नीचे से कुछ खोजने लगा । एक पराठे का टुकड़ा मिला, शराबी उसे बालक के हाथ में देकर बोला--"तबतक तू इसे चबा; मैं तेरा गढ़ा भरने के लिए कुछ और ले आऊँ--सुनता है रे छोकरे ! रोना मत, रोएगा तो खूब पीटूंगा । मुझसे रोने से बड़ा बैर है । पाजी कहीं का, मुझे भी रुलाने का..........।"

शराबी गली के बाहर भागा । उसके हाथ में एक रुपया था । बारह आने का एक देशी अद्धा और दो आने का चाँप..... दो आने की पकौड़ी, नहीं, नहीं, आलू-मटर........अच्छा, न सही । चारों आने का माँस ही ले लूँगा; पर यह छोकरा ! इसका गढ़ा जो भरना होगा, यह कितना खाएगा और क्या खाएगा ? ओह ! आजतक तो कभी मैंने दूसरों के खाने का सोच किया ही नहीं । तो क्या ले चलूँ ? पहले एक अद्धा ही ले लूं !--इतना सोचते-सोचते उसकी आँखों पर बिजली के प्रकाश की झलक पड़ी । उसने अपने को मिठाई की दुकान पर खड़ा पाया । वह शराब का अद्धा लेना भूल कर मिठाई-पूरी ख़रीदने लगा । नमकीन लेना भी न भूला । पूरे एक रुपए का सामान लेकर वह दुकान से हटा । जल्द पहुँचने के लिए एक तरह से दौड़ने लगा । अपनी कोठरी में पहुँच कर उसने दौनों की पाँत बालक के सामने सजा दी । उसकी सुगन्ध से बालक के गले में एक तरह की तरावट पहुंची । वह मुस्कुराने लगा ।

शराबी ने मिट्टी की गगरी से पानी उंड़ेलते हुए कहा--"नटखट कहीं का हँसता है ! सोंधी बास नाक में पहुंची न ! ले, खूब ठूंस कर खा ले और रोया कि पिटा ।"

दोनों ने बहुत दिन पर दो मित्र की तरह साथ बैठ कर भर-पेट खाया । सीली जगह में सोते हुए बालक ने शराबी का पुराना बड़ा कोट ओढ़ लिया था । जब उसे नींद आ गई, तो शराबी भी कम्बल तान कर बड़बड़ाने लगा--सोचा था, आज सात दिन पर भर-पेट पीकर सोऊँगा; लेकिन यह छोटा-सा रोना पाजी, न जाने कहां से आ धमका !

X X X

एक चिन्तापूर्ण आलोक में आज पहले-पहल शराबी ने आँख खोल कर, कोठरी में बिखरी हुई दारिद्र्य की विभूति को देखा और देखा उस घुटनों से ठुड्डी लगाये हुए निरीह बालक को। उसने तिल-मिला कर मन-ही-मन प्रश्न किया—

किसने ऐसे सुकुमार फूलों को कष्ट देने के लिये निर्दयता की सृष्टि की ? आह री नियति ! तब इसको लेकर मुझे घरबारी बनना पड़ेगा क्या ? दुर्भाग्य ! जिसे मैंने कभी सोचा भी न था। मेरी इतनी माया-ममता—जिसपर आज तक केवल बोतल का ही पूरा अधिकार था—इसका पक्ष क्यों लेने लगी ? इस छोटे से पाजी ने मेरे जीवन के लिए कौन-सा इन्द्रजाल रचने का बीड़ा उठाया है ? तब क्या करूं ? कोई काम करूं ? कैसे दोनों का पेट चलेगा ? नहीं, भगा दूंगा इसे—"आंख तो खोलो !"

बालक अंगड़ाई ले रहा था। उठ बैठा। शराबी ने कहा—"ले, उठ ! कुछ खा ले। अभी रात का बचा हुआ है, और अपनी राह देख ! तेरा नाम क्या है रे ?"

बालक ने सहज हँसी हँसकर कहा—"मधुआ ! भला हाथ-मुंह भी न धोऊं, खाने लगूं ! और जाऊंगा कहां ?"

आह ! कहां बताऊं इसे कि चला जाय ! कह दूं कि भाड़ में जा; किन्तु वह आज तक दुःख की भट्ठी में जलता ही तो रहा है। तो... वह चुपचाप घर से झल्लाकर सोचता हुआ निकला—"ले पाजी, अब यहां लोटूंगा ही नहीं; तू ही इस कोठरी में रह !"

शराबी घर से निकला। गोमती-किनारे पहुंचने पर उसे स्मरण हुआ कि वह कितनी ही बातें सोचता आ रहा था; पर कुछ भी सोच न सका। हाथ-मुंह धोने में लगा। उजली हुई धूप निकल आई थी। वह चुपचाप गोमती की धारा को देख रहा था। धूप की गर्मी से सुखी होकर वह चिन्ता भुलाने का प्रयत्न कर रहा था कि किसी ने पुकारा—

"भले आदमी रहे कहां ? सालों पर दिखाई पड़े। तुम को खोजते-खोजते मैं थक गया।"

शराबी ने चौंक कर देखा। वह कोई जान-पहचान का तो मालूम होता था; पर कौन है, यह ठीक-ठीक नहीं जान सका।

उसने फिर कहा—"तुम्हीं से कह रहे हैं। सुनते हो, उठा ले जाओ अपनी सान धरने की कल, नहीं तो सड़क पर फेंक दूंगा। एक ही तो कोठरी जिसका मैं दो रुपया किराया देता हूं, उसमें क्या मुझे अपना कुछ रखने के लिये नहीं है ?"

"ओ हो ! रामजी, तुम हो, भाई मैं भूल गया था । तो चलो आज ही उसे उठा लाता हूं ।"—कहते हुए शराबी ने सोचा—"अच्छी रही, उसी को बेचकर कुछ दिनों तक काम चलेगा ।

गोमती नहाकर, रामजी उसका साथी, पास ही अपने घर पर पहुंचा । शराबी को कल देते हुए उसने कहा—"ले जाओ, किसी तरह मेरा इससे पिण्ड छूटे ।"

बहुत दिनों पर आज उसको कल ढोना पड़ा । किसी तरह अपनी कोठरी में पहुंच कर उसने देखा कि बालक चुपचाप बैठा है । बड़बड़ाते हुए उसने पूछा—"क्यों रे, तूने कुछ खा लिया कि नहीं ?"

"भर-पेट खा चुका हूं, और वह देखो तुम्हारे लिये भी रख दिया है ।" कहकर उसने अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी से उस रूखी कोठरी को तर कर दिया । शराबी एक क्षणभर चुप रहा । फिर चुपचाप जलपान करने लगा । मन-ही-मन सोच रहा था—यह भाग्य का संकेत नहीं तो और क्या है ? चलूं, फिर लेकर सान देने का काम चलता करूं । दोनों का पेट भरेगा । वही पुराना चर्खा फिर सिर पड़ा । नहीं तो, दो बातें किस्सा-कहानी इधर-उधर की कह कर, अपना काम चला ही लेता था । पर अब तो बिना कुछ किये घर नहीं चलने का । जल पीकर बोला—"क्यों रे मधुआ, अब तू कहां जायगा ?

"कहीं नहीं !"

"यह लो, तो फिर क्या यहां जमा गड़ी है, कि मैं खोद-खोद कर तुझे मिठाई खिलाता रहूंगा ?"

"तब कोई काम करना चाहिये ।"

"करेगा ?"

"जो कहो !"

"अच्छा, तो आज से मेरे साथ-साथ घूमना पड़ेगा । यह कल तेरे लिये लाया हूं । चल आज से तुझे सान सिखाऊंगा । कहां रहूंगा, इसका कुछ ठीक नहीं । पेड़ के नीचे रात बिता सकेगा न ?"

"कहीं भी रह सकूंगा; पर उस ठाकुर की नौकरी न कर सकूंगा !"

शराबी ने एक बार स्थिर दृष्टि से उसे देखा । बालक की आंखें दृढ़ निश्चय की सौगन्ध खा रही थीं ।

शराबी ने मन-ही-मन कहा—बैठे-बैठाये यह हत्या कहां से लगी । अब तो

शराब न पीने की मुझे भी सौगन्ध लेनी पड़ी ।

वह साथ ले जानेवाली वस्तुओं को बटोरने लगा । एक गट्ठर का और दूसरा कल का, दो बोझ हुए ।

शराबी ने पूछा—"तू किसे उठायेगा ?"

"जिसे कहो ।"

"अच्छा, तेरा बाप जो मुझे पकड़े तो ?"

"कोई नहीं पकड़ेगा, चलो भी । मेरे बाप मर गये !"

शराबी आश्चर्य से उसका मुंह देखता हुआ कल उठाकर खड़ा हो गया । बालक ने गठरी लादी । दोनों कोठरी छोड़ कर चल पड़े ।



: ३ :

झलमला

मैं बरामदे में टहल रहा था। इतने में मैंने देखा कि बिमला दासी अपने आंचल के नीचे एक प्रदीप लेकर बड़ी भाभी के कमरे की ओर जा रही है। मैंने पूछा--"क्यों री! यह क्या है ?" वह बोली—"झलमला।" मैंने फिर पूछा—"इससे क्या होगा ?" उसने उत्तर दिया—"नहीं जानते हो बाबू, आज तुम्हारी बड़ी भाभी पंडितजी की बहू की सखी होकर आई हैं, इसीलिये मैं उन्हें झलमला दिखाने जा रही हूं।"

तब तो मैं भी किताब फैंक कर घर के भीतर दौड़ गया। दीदी से जाकर मैं कहने लगा—"दीदी, थोड़ा तेल तो दो।"

दीदी ने कहा—"जा अभी मैं काम में लगी हूं।"

मैं निराश होकर अपने कमरे में लौट आया। फिर मैं सोचने लगा--यह अवसर जाने न देना चाहिए, अच्छी दिल्लगी होगी। मैं इधर-उधर देखने लगा। इतने में मेरी दृष्टि एक मोमबत्ती के टुकड़े पर पड़ी। मैंने उसे उठा लिया और एक दियासलाई का बक्स लेकर भाभी के कमरे की ओर गया। मुझे देखकर भाभी ने पूछा-"कैसे आये बाबू ? मैंने बिना उत्तर दिये ही मोमबत्ती के टुकड़े को जलाकर उनके सामने रख दिया। भाभी ने हँसकर पूछा—"यह क्या है ?"

मैंने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—"झलमला।"

भाभी ने कुछ न कहकर मेरे हाथ पर पांच रुपये रख दिये। मैं कहने लगा—"भाभी, क्या तुम्हारे प्रेम के आलोक का इतना ही मूल्य है ? भाभी ने हँसकर कहा—"तो कितना चाहिए ?" मैंने कहा—"कम से कम एक गिन्नी। भाभी कहने लगी—"अच्छा, इस पर लिख दो; मैं अभी देती हूं।

मैंने तुरन्त ही चाकू से मोमबत्ती के टुकड़े पर लिख दिया—'मूल्य एक गिन्नी।' भाभी ने गिन्नी निकाल कर मुझे दे दी और मैं अपने कमरे में चला आया। कुछ दिनों बाद गिन्नी के खर्च हो जाने पर मैं यह घटना बिलकुल भूल गया।

(२)

आठ वर्ष व्यतीत हो गये। मैं बी० ए०, एल० एल० बी० होकर इलाहाबाद से

घर लौटा। घर की वैसी दशा न थी जैसी आठ वर्ष पहले थी। न भाभी थी, न बिमला दासी ही। भाभी हम लोगों को सदा के लिए छोड़कर स्वर्ग चली गई थी, और विमला कटंगी में खेती करती थी।

संध्या का समय था। मैं अपने कमरे में बैठा न जाने क्या सोच रहा था। पास ही कमरे में पड़ोस की कुछ स्त्रियों के साथ दीदी बैठी थी। कुछ बातें हो रही थीं, इतने में मैंने सुना, दीदी किसी स्त्री से कह रही हैं—"कुछ भी हो बहिन, मेरी बड़ी बहू घर की लक्ष्मी थी।" उस स्त्री ने कहा—"हां, बहिन, खूब याद आई, मैं तुमसे पूछने वाली थी। उस दिन तुमने मेरे पास सखी का सन्दूक भेजा था न ? दीदी ने उत्तर दिया—"हाँ बहिन, बहू कह गई थी, उसे रोहिणी को दे देना।" उस स्त्री ने कहा—"उसमें और सब तो ठीक था; पर एक विचित्र बात थी।" दीदी ने पूछा—"कैसी विचित्र बात ?" वह कहने लगी—"उसे मैंने खोलकर एक दिन देखा तो उसमें एक जगह खूब हिफाज़त से रेशमी रूमाल में कुछ बंधा हुआ मिला। मैं सोचने लगी यह क्या है ? कौतूहलवश उसे खोलकर मैंने देखा। बहिन, कहो तो उसमें भला क्या रहा होगा ?"

दीदी ने उत्तर दिया—"गहना रहा होगा।" उसने हँसकर कहा--"नहीं, गहना न था। वह तो एक अधजली मोमबत्ती का टुकड़ा था और उस पर लिख हुआ था—मूल्य एक गिन्नी।"

क्षण भर के लिए मैं ज्ञान-शून्य हो गया, फिर अपने हृदय के आवेग को न रोककर मैं उस कमरे में घुस पड़ा और चिल्लाकर कहने लगा—"वह मेरी है, मुझे दे दो !" कुछ स्त्रियां मुझे देखकर भागने लगीं। कुछ इधर-उधर देखने लगीं। उस स्त्री ने अपना सिर ढाँपते-ढाँपते कहा—"अच्छा बाबू, मैं कल उसे भेज दूंगी।" पर मैंने रात को ही एक दासी भेजकर उस टुकड़े को मंगा लिया। उस दिन मुझसे कुछ नहीं खाया गया। पूछे जाने पर मैंने यह कह कर टाल दिया कि सिर में दर्द है। बड़ी देर तक इधर-उधर टहलता रहा। जब सब सोने के लिए गये तब मैं अपने कमरे में आया। मुझे उदास देखकर कमला पूछने लगी—"सिर का दर्द कैसा है ?" पर मैंने कुछ उत्तर न दिया, चुप-चाप जेब से मोमबत्ती को निकालकर उसे जलाया और उसे एक कोने में रख दिया।

कमला ने पूछा—"यह क्या है ?"

मैंने उत्तर दिया—"झलमला।"

कमला कुछ न समझ सकी। मैंने देख कि थोड़ी देर में मेरे झलमले का क्षुद्र आलोक रात्रि के अन्धकार में विलीन हो गया। ○

: ४ :

आत्म-शिक्षण

महाशय रामरत्न को इधर रामचरण के समझने में कठिनाई हो रही है। वह पढ़ता है और अपने में रहता है। कुछ कहते हैं तो दो-एक बार तो सुनता ही नहीं। सुनता है तो जैसे चौंक पड़ता है। ऐसे समय, मानो विघ्न पड़ा हो इस भाव से वह झुंझला भी उठता है। लेकिन तभी झुंझलाने पर वह अपने से अप्रसन्न भी दीखता है और फिर बिन बात, बिन अवसर वह बेहद विनम्र हो जाता है।

यह तेरह वर्ष की अवस्था ही ऐसी है। तब कुछ बालक में उग रहा होता है। इससे न वह ठीक बालक होता है, न कुछ और। उसे प्यार नहीं कर सकते, न उससे परामर्श कर सकते हैं। तब वह किस क्षण बालक है और किस पल बुजुर्ग, यह नहीं जाना जा सकता। उसका आत्म-सम्मान कब कहां रगड़ खा जायगा, कहना कठिन है। उससे कुछ डरकर चलना पड़ता है।

रामरत्न की बात तो भी दूसरी है। घर में अधिक काल उन्हें नहीं रहना होता। सवेरे नौ बजे दफ्तर की तैयारी हो जाती है और सांझ अंधेरे वापस आते हैं। बाद में खाने के समय के अलावा कोई घण्टाभर घर में रहने पाते होंगे। रात नींद की होती ही है। पर दिनमणि की परेशानी की न पूछो। वह रामचरण को लेकर हैरान है। अकेले में बैठकर सोचती है, दो जनियों से पूछकर वह विचारती है। पर ठीक कुछ समझ नहीं आता कि रामचरण से कैसे निबटे ? जानती है कि लड़का यह सुशील है, खोटी आदत कोई नहीं है। किताबें सदा अच्छी और धर्म की पढ़ता है पर उसकी तबियत की थाह जो नहीं मिलती। वह गुम-सुम रहता है। चार दफे बात कहते हैं तब जाकर कहीं जवाब देता है। इस कारण आये दिन कलह बनी रहती है। इसमें दिनमणि को अपनी जुबान खराब करनी पड़ती है और रामचरण अटल रहता है, वह दस तरह झीकती है—फटकारती है। डपटती है और कहती है मैं क्या भौंकने के लिये हूं ? पर रामचरण को जो करना होता है करता है और जो नहीं

करना होता वह नहीं करता। सारांश, दिनमणि कह-सुनकर अपने आप में ही फुंक रहती है।

दिनमणि ने अब अपने भीतर से सीख लेकर रामचरण से कहना-सुनना लगभग छोड़ दिया है। कुछ होता है तो पुत्र के पिता पर जा डालती है। सवेरे का स्कूल है और आठ बज गये हैं पर रामचरण अभी खाट पर पड़ा है। पड़ोस के सब बालक स्कूल गये, खुद घर की छोटी बिन्नी नाश्ता करके स्कूल जा चुकी है। आंगन में धूप चढ़ आई है। लेकिन रामचरण है कि खाट पर पड़ा है।

दिनमणि ने पति से कहा—"सुनते हो जी, लड़का सो रहा है और वक्त इतना हो गया। उसे क्या स्कूल नहीं जाना है ? जगा क्यों नहीं देते ?"

रामरत्न अखबार पढ़ रहे थे, युद्ध में अनी का समय आया ही चाहता है, बोले—"क्या रामचरण ! —तो ?"

"तो क्या"—पत्नी कपार पर हाथ रखकर बोली—"सूरज सिर पर आ जायगा तब वह उठेगा ? एक तो कमजोर है और तुमने आँख फेर रखी है। कहती हूं, स्कूल नहीं भेजोगे ? या ऐसे ही उसे नवाब बनाने का इरादा है ? तुमने ही उसे सिर पर चढ़ा रखा है।"

रामरत्न ने कहा—"क्या बात है ? बात क्या है ?"

दिनमणि का भाग्य ही वाम है। वैसा पुत्र और ऐसा पति ! बोली—"बात क्या है—तब से कह तो रही हूं कि अपने लाड़ले को चलकर उठाओ। पता है, नौ बजेंगे !"

रामरत्न ने अन्दर जाकर जोर से कहा—"रामचरण। उठोगे नहीं। क्या तुम्हें पढ़ने का खयाल नहीं है ?

करवट लेकर रामचरण ने पिता की ओर देखा।

उन आंखों में निर्दोष आलस्य था और आज्ञा-पालन की शीघ्रता नहीं थी।

पिता ने कहा—"चलो, उठो। सुना नहीं।"

मालूम हुआ कि रामचरण ने सचमुच नहीं सुना है। वह झटपट उठकर बैठ नहीं गया। पिता ने हाथ से पकड़कर उसे खींचते हुए कहा—"चलो, उठते हो कि नहीं ? दिन चढ़ आया है और दुनिया स्कूल गई। नवाबसाहब सोते पड़े हैं ?"

रामचरण पहले झटके में ही उठकर सीधा हो गया। अब वह आंखें मल रहा था। पिता ने कहा—"चलो, जल्दी निबटो, और स्कूल जाओ। क्या तमाशा बना रखा

है, अपने स्कूल का तुम्हें खयाल नहीं है ?"

रामचरण बिस्तर से उठकर चल दिया। दिनमणि उसी कमरे में एक ओर खड़ी यह देख रही थी। उसके जाने पर बोली—"मिज़ाज तो देखे इस शरीर के। इतना भौंकवाया तब कहीं जाकर उठा है। और अब भी देखो तो मुंह चढ़ा हुआ है।"

अख़बार रामरत्न के हाथ में ही था, बोले—"उसके नाश्ते-वाश्ते को निकाल रखो कि जल्दी स्कूल चला जाय। देर न हो। बच्चा है, एक रोज़ आंख नहीं खुली तो क्या बात है ?"

दिनमणि इसका उपयुक्त उत्तर देने को ही थी कि रामरत्न चलकर अपनी बैठक में आ गए और रूस-जर्मन मोर्चे का नया नकशा अपने मन में बैठाने लगे। पर नकशा ठीक तरह वहां जम न सका क्योंकि जहां रोस्टोव चाहते हैं वहां रामचरण आ बैठता था। तब रामचरण पर उन्हें करुणा होने लगी। मानो वह अनाथ हो। माता है, पिता है पर जैसे उस बालक का फिर भी संगी कोई नहीं है। उन्हें अपने पर और अपनी नौकरी पर क्षोभ होने लगा कि देखो वह लड़के के लिए कुछ भी समय नहीं दे पाते। घर में रहकर बालक पराया हुआ जा रहा है।

इसी समय सुनते क्या हैं कि अन्दर कुछ गड़बड़ मच उठी है। जाकर मालूम हुआ कि रामचरण (दिनमणि ने साहब बहादुर कहा था।) नहाया नहीं है, न ठीक तरह मंजन किया है और मैं कहती हूं तो बदलकर नया निकर भी नहीं पहनता है।

मैंने कहा—"निकर बदल न लो, रामचरण ?"

उसने कहा—"देर हो जायगी।"

मैंने कहा—"आधी मिनट में क्या फर्क होता है, इतने के लिए मां का कहना नहीं टाला करते भाई।"

रामचरण ने इस पर जाकर निकर बदल लिया और बस्ता लेकर चलने को तैयार हो गया।

स्कूल जाते समय वह एक आना पैसा ले जाता है। देते समय पिता उससे तर्क करते हैं कि ऐसी-वैसी चीज़ बाज़ार की लेकर नहीं खानी चाहिए, समझे। पर वह बात ऊपरी होती है और पिता अपना टैक्स देना नहीं भूलते। उसको जाते देख पिता ने कहा—"क्यों आज चार पैसे नहीं ले जाओगे ?"

उसके आने पर कहा—"नाश्ता तो करते जाओ और पैसे भी ले जाना।"

उसने सुन लिया। उसका मुंह गिरा हुआ था और वह बोला नहीं।

रामरत्न ने सोचा कि स्कूल में शायद देर हो जाने का उसे डर है। थपथपाते हुए वह उसे मेज़ पर ले गए और खुद मंगाकर नाश्ते की तश्तरी उसके सामने रख दी। कहा कि मैं हेडमास्टर को चिट्ठी लिख दूंगा, देर के लिए वह कुछ नहीं कहेंगे। अब तुम खाओ। तभी उन्होंने घड़ी देखी साढ़े आठ हो गए थे और उनका सब नित्यकर्म शेष था।

"खाओ बेटा, खाओ।"—कहते हुए वह वहां से चल दिये।

स्नान समाप्त कर पाये थे कि बाहर से दिनमणि ने सुनाकर कहा—

"देखो जी, तुम्हारे साहबज़ादे बिना खाये-पिये जा रहे हैं। फिर जो पीछे तुम मुझे कहो।"

रामरत्न शीघ्रता से केवल धोती पहने और अंगोछा कन्धे पर रखकर बाहर आए, रामचरण से बोले—"नाश्ता करते जाते बेटे।"

रामचरण का मुंह सूखा था और गिरा हुआ था। उसने कुछ जवाब नहीं दिया।

"क्यों तबियत तो ख़राब नहीं ?"

रामचरण ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से पिता को देखा और अब भी कुछ बोला नहीं। पिता को ऐसा लगा कि उन आंखों में पानी तिर आना चाहता है। उन्हें कुछ समझ न आया। हठात् बोले—"मां से नाराज़ नहीं होना चाहिए। भई वह जो कहती है तुम्हारे भले के लिए ही कहती है। आओ चलो कुछ नाश्ता कर लो।"

रामचरण फिर एक बार मूंगी आंखों से देखकर मुंह लटकाये वहीं-का-वहीं खड़ा रह गया।

पिता ने इसपर पुत्र को किंचित् उपदेश दिया और फिर भी उसे वहीं अचल देखकर किंचित रोष में उसे छोड़कर चल दिये। वहीं से पुकारकर पत्नी से उन्होंने कहा—"नहीं खाता है तो जाने दो।" और रामचरण के प्रति कहते गए—"हमारे बक्स में पर्स होगा, उसमें से अपनी इकन्नी लेते जाना समझे ? भूलना नहीं।"

रामरत्न संध्या बीते घर लौटे तो देखा कि रामचरण खाट पर लेटा हुआ है। और रोज़ अबतक वह खेल से मुश्किल से लौट पाता था। यह भी मालूम हुआ कि उसने खाना नहीं खाया है और उसकी मां ने काफ़ी उसे कहा-सुना है।

रामरत्न विचार-शील हैं, पर उन्हें अति अच्छी नहीं लगती। सब सुनकर उन्होंने

ज़ोर से कहा—"रामचरण, क्या बात है जी ?"

दफ्तर से वह इसी उधेड़-बुन में चले आ रहे थे। डर रहे थे कि घर में कहीं बात बढ़ी न हो। उनके मन में पुत्र के लिये करुणा का भाव था। उन्हें अपना बचपन याद आता था कि किस तरह बचपन में उन्हें भी गलत समझा गया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इन्ट्रेन्स में पढ़ी 'होमकमिंग' कहानी का वह लड़का याद आता था जिसका नाम चाह कर भी वह स्मरण न कर पाते थे। उसकी बात सोचकर उनके रोंगटे खड़े हो जाते थे। विचार करते थे कि लड़कों की अपनी स्वप्न की दुनिया अलग होती है। हम बड़ों का प्रवेश वहां निषिद्ध है। अपने सपनों पर चोट वह नहीं सह सकते। हम बड़ों को इसका खयाल रखना चाहिये।

लेकिन जब घर में पैर रखते ही दिनमणि ने रामचरण की उद्दण्डता और अपने धैर्य की बात सुनाई तो उन्हें मालूम हुआ कि सचमुच लड़के में जिद बढ़ने देनी नहीं चाहिये। यह बात सच थी कि दिनमणि ने स्कूल से लौटने पर पुत्र से खाने के लिये आध घन्टे तक अनुरोध किया था। उस सारे काल रामचरण मुंह फेर खाट पर पड़ा रहा था। उकताकर अन्त में उत्तर में उसने तीन बार यही कहा था—"मैं नहीं खाऊंगा, नहीं खाऊंगा, नहीं खाऊंगा।" यह उत्तर सुनकर दिनमणि खाट से उठ खड़ी हुई थी और उसने कुछ तथ्य की बातें बिना लाग-लपेट के रामचरण को वहीं-की-वहीं सुना दी थीं। रामचरण सब को पीता चला गया।

यथार्थ स्थिति का परिचय पाकर रामरत्न दफ्तर के कपड़ों में ही अन्दर जाकर उसे डपटकर बोले--"रामचरण, क्या बात है जी ?"

रामचरण ने पिता के स्वर पर चौंककर ऐसे देखा, जैसे कहीं किसी खास बात के होने का उसे पता न हो, और वह जानना चाहता हो।

रामचरण की आंखों में फैली इस शिशुवत अबोधता पर पिता को और तैश हो आया। बोले—"खाना तुमने क्यों नहीं खाया जी ? तुम्हारी मंशा क्या है ? क्या चाहते हो ?" क्या घर में किसी को चैन लेने देना नहीं चाहते ? सब तुम्हारी खुशामद करें, तब तुम खाओगे ? आखिर तुम क्या चाहते हो ? रोज़-रोज़ ये तमाशा किस लिए ?"

इसी तरह दो-तीन मिनट तक रामरत्न क्रोध में अपनी बात कहते चले गये। रामचरण खाट पर पड़ा आंख फाड़े उन्हें देख रहा था। जैसे वह कुछ न समझ रहा हो।

पिता ने वहीं से पत्नी से हुक्म देकर कहा—"लाना तो खाने को, देखें कैसे नहीं

खाता है ?"

दिनमणि खाना लेने गई और पिता ने पुत्र को कहा—"अब और तमाशा न कीजिए। हम समझते थे कि आप समझते हैं। लेकिन दीखता है कि आप इसी तरह बाज आइयेगा।"

रामचरण तत्क्षण न उठता दिखाई दिया तो कड़ककर बोले—"सुना नहीं आपने, या अब चपत लगे ?"

रामचरण सुनकर एक साथ उठकर बैठ गया। उसके मुख पर भय नहीं, विस्मय था और वह पिता को आंख फाड़कर चकित बना-सा देख रहा था।

खाने की थाली आई और सामने उसकी खाट पर रख दी गई। पर उसकी ओर रामचरण ने हाथ बढ़ाने में शीघ्रता नहीं की।

पिता ने कहा—"अब खाते क्यों नहीं हो ? देखते तो हो कि मैंने दफ्तर के कपड़े भी नहीं उतारे, क्या मैं तुम्हारे लिये कयामत तक यहीं खड़ा रहूंगा ? चलो, शुरू करो।"

रामचरण फिर कुछ देर पिता को देखता रहा, अन्त में बोला—"मुझे भूख नहीं है।"

"कैसे भूख नहीं है ?" पिता ने कहा—"सवेरे से कुछ नहीं खाया। जितनी भूख हो उतना खाओ।"

रामचरण ने उन्हीं फटी आंखों से पिता को देखते हुए कहा—"भूख बिलकुल नहीं है।"

पिता अब तक जब्त से काम ले रहे थे। लेकिन यह सुनकर उनका धैर्य छूट गया और उन्होंने एक चांटा कनपटी पर दिया, कहा—"मक्कारी न करो, सीधी तरह खाने लग जाओ।"

इसपर रामचरण बिलकुल नहीं रोया, न शिकायत का भाव उस पर दिखाई दिया। वह शान्त भाव से थाली की तरफ हाथ बढ़ाकर टुकड़ा तोड़ने लगा। माता और पिता दोनों पास खड़े हुए देख रहे थे। रामचरण का मुंह सूखा था और ऐसा लगता था कि कौर उससे चबाया नहीं जा रहा है। इस बात पर उसके पिता को तीव्र क्रोध आया पर जाने किस विधि वह अपने क्रोध को रोके रह गए।

पांच-सात कौर खाने के बाद रामचरण सहसा वहां से उठा, जल्दी-जल्दी चलकर बाहर आया, नाली पर पहुंचकर सब कै कर बैठा।

पिता यह सब देख रहे थे। मुंह साफ़ करके रामचरण लौटा तो पिता ने कठिनाई से अपने को वश में करके कहा, "अच्छा हुआ। कै तो अच्छी चीज़ है। अब स्वस्थ हो गये होंगे, लो अब खाओ।"

रामचरण ने आंखों में पानी लाकर कहा, 'मुझे भूख बिलकुल नहीं है।"

"लेकिन तुमने सवेरे से खाया ही क्या है ?" पिता ने कहा, "देखो रामचरण, यह सब आदत तुम्हारी नहीं चलेगी। ज़िद की हद होती है। या तो सीधी तरह खाना खा लो, नहीं तो अब से हमसे तुम्हारा वास्ता नहीं—बोलो, खाते हो ?"

रामचरण ने कहा, "मुझे भूख नहीं है।"

इसपर पिता ज़ोर से बोले, "लो जी, ये उठा ले जाओ थाली। अब इनसे ख़बरदार जो तुमने कुछ कहा। हम तो इनके लिये कुछ हैं ही नहीं। फिर कहना-सुनना क्या ?"

थाली वहां से उठ गई और रामचरण बिना कुछ बोले हक्का-बक्का-सा पिता को देखता रह गया। पिता वहां से जाते-जाते पुत्र से बोले, "सुनिये, अब आपका राज है, जो चाहे कीजिये, जो चाहे न कीजिये। हमने आपको इसी रोज़ के लिये पाला था।" कहते-कहते उनकी वाणी गद्‌गद् हो आई। बोले, "ठीक है, जैसी आपकी मर्जी। बुढ़ापे में हमें यही दिन दिखाइएगा।"

कहते हुए पिता वहां से चले गये। रामचरण की आंखों में आंसू आ गए थे। पर पिता के जाने पर अपना सिर हाथों में लेकर वह वहीं खाट पर पड़ गया।

रात होती जाने लगी। पर पिता के मन का उद्वेग शान्त होने में न आता। उनको रोष था और अपने से खीज थी। वह विचारवान् व्यक्ति थे। सोचते थे लड़के में दोष हमसे ही आ सकता है। त्रुटि कहीं हममें ही होगी। लेकिन ख्याल होता था—जिद अच्छी नहीं है। दिनमणि का कहना है कि लड़के को शुरू में काबू में नहीं रखा, इससे वह सिर चढ़ गया है। क्या यह ग़लती है ? क्या डांटना बुरा है ? लाड़ से बच्चे बेशक संभल नहीं सकते। लेकिन मैंने कब उसकी तरफ ध्यान दिया है। उसने कभी कुछ पूछा है तो मैंने टाल दिया है। न उसकी मां ही समय दे पाती है। मैं समझता हूं कि लापरवाही है जिससे उसमें यह आदत आई है।

सोचते-सोचते उन्होंने पत्नी को बुलाया और पूछा और जिरह की। वह कहीं-न-कहीं से बच्चे से बाहर दोष को पा लेना चाहते थे। पर जिरह से कुछ फल नहीं निकला। उन्हें मालूम हुआ कि वह स्कूल से घर रोज़ से कुछ जल्दी ही आया

था ।

"पूछा नहीं, जल्दी क्यों आया है ?"

"नहीं, मैं तो उससे कुछ पूछती नहीं, मुंह लटकाये आया और चादर लेकर खाट पर लेट गया । कुछ बोला न चाला ।" तब पिता ने ज़ोर से आवाज़ देकर पुकारा, "रामचरण !" सुनकर रामचरण वहां आ गया ।

पूछा, "तुम आज स्कूल पूरा करके नहीं आये ?"

"नहीं ।"

"पहले आ गये ?"

"हां ।"

"क्यों ?"

इसका उत्तर लड़के ने नहीं दिया । झुककर पास की कुर्सी का सहारा ले वह पिता को देखने लगा ।

पिता ने कहा, "सहारा छोड़ो, सीधे खड़े हो । तुम बीमार नहीं हो । और सुनो, तुम सवेरे बिना खाये गये और किसी की बात नहीं सुनी । स्कूल बीच में छोड़कर चले आये । आये तो रूठकर पड़े रहे । और इतना कहा तो भी अब तक खाना नहीं खाया । बताओ, ऐसे कैसे चलेगा ?"

लड़का चुप रहा ।

पिता ज़ोर से बोले, "तुम्हारे मुंह में जुबान नहीं है ? कहते क्यों नहीं, ऐसे कैसे चलेगा ? बताओ, इस ज़िद की तुम्हें क्या सज़ा दी जाय ? देखते नहीं, घर भर में तुम्हारी वजह से क्लेश मचा रहता है ।"

लड़का अब भी चुप ही था ।

अत्यंत संयम पूर्वक पिता ने कहा, "देखो, मेरी मानो तो अब भी खाना खा लो और सवेरे समय पर स्कूल चले जाना । आइन्दा ऐसा न हो । समझे ? सुनते हो ?"

लड़के की आंखें नीची थीं । कुछ मद्धम पड़कर पिता ने कहा, "भूख नहीं तो जाने दो । लेकिन कल सवेरे नाश्ता करके ठीक वक्त से स्कूल चले जाना । देखो इस उम्र में मेहनत से पढ़ लोगे और मां-बाप का कहना मानोगे तो तुम्हीं सुख पाओगे । नहीं तो पीछे तुम्हें ही पछताना होगा । लो जाओ, कैसे अच्छे बेटे हो । बोलो, खाओगे ?"

जाते-जाते रामचरण ने कहा, "मुझे भूख नहीं है ।"

पिता का जी यह सुनकर फिर खराब हो आया । लेकिन उन्होंने विचार से काम लिया और अपने को संयत रखा ।

अगले दिन देखा गया कि वह फिर समय पर नहीं उठ सका है । जैसे-जैसे उठाया गया है तो अनमने मन से काम कर रहा है । नाश्ते को कहा गया तो फिर नाश्ता नहीं ले रहा है ।

पिता ने बहुत धैर्य से काम लिया । लेकिन कई बार अनुरोध करने पर भी जब रामचरण ने यही कहा कि भूख नहीं है तो उनका धीरज टूट गया । तब उन्होंने उसे अच्छी तरह पीटा और अपने सामने नाश्ता कराके छोड़ा । उसके स्कूल चले जाने पर उनमें आत्मालोचना और कर्तव्य-भावना जागृत हुई । उन्होंने सोचा कि सायंकाल का समय वह मित्र-मण्डली से बचाकर पुत्र को दिया करेंगे । उसे अच्छी-अच्छी बात बताएंगे और पढ़ाई की कमज़ोरी दूर करेंगे । पत्नी से कहकर रामचरण की आलमारी में से उन्होंने उसकी किताब और कापियां मंगाई । वह कुछ समय लगाकर रामचरण की पढ़ाई-लिखाई के बारे में परिचय पा लेना चाहते थे । पहले उन्होंने पुस्तकें देखीं फिर कापियां देखीं । कापियों से अन्दाज़ा हुआ कि उसका कम्पोजीशन बहुत खराब है और भाषा का ज्ञान काफी नहीं है । किन्तु अन्तिम कापी जो सबसे साफ़ और बढ़िया थी, जिसपर किसी विषय का उल्लेख नहीं था, उसको खोला तो वह देखते-के-देखते रह गये । सुन्दर-सुन्दर अक्षरों में पुस्तकों में से चुने हुए नीति-वाक्य बालक ने उस कापी में अंकित किये हुए थे । जगह-जगह नीचे लाल स्याही से महत्त्वपूर्ण अंशों पर रेखा खिंची हुई थी । उसमें पहले ही सफ़े पर पिता ने पढ़ा--

"बड़ों की आज्ञा सदा सुननी चाहिये और कभी उनको उत्तर नहीं देना चाहिये ।"

"दुःख सहना वीरों का काम है । अपने दुःख में सज्जन पुरुष किसी को कष्ट नहीं देते और उसे शान्ति से सहते हैं ।"

"रोग मानने से बढ़ता है । रोग की सबसे अच्छी औषधि निराहार है ।"

"घर ही उत्तम शिक्षालय है । सफल पुरुष पाठशाला में नहीं, जीवन-शाला में अध्ययन करते हैं ।"

"दृढ़-संकल्प में जीवन की सिद्धि है । जो बाधाओं से नहीं डिगता, वही कुछ करता है ।"

पहले पृष्ठ के ये रेखांकित वाक्य पढ़कर कापी को ज्यों-का-त्यों खोले पिता सामने शून्य में देखते-के-देखते रह गये ।

दफ्तर में भी वह शान्ति न पा सके । शाम को लौटे तो मानो अपने को क्षमा न कर पाते थे । घर आने पर पत्नी ने कहा—"अरे उसे देखो तो, तब से ही कै हो रही है ।"

रामरत्न ने आकर देखा । रामचरण शान्त भाव से लेटा हुआ था ।

पत्नी ने कहा—"स्कूल से आया तो निढाल हो रहा था । मुश्किल से दीवार पकड़ करके जीना चढ़ करके आया । और तब से दस बार कै हो चुकी है । पूछती हूं तो कुछ कहता नहीं । देखो न क्या हो गया है ?"

पिता ने कहा—"रामचरण, क्या बात है ?"

रामचरण ने कहा—"कुछ नहीं, मतली है ।"

"कल भी थी ?"

"हां ।"

पिता को और समझना शेष न रहा । वह यह भी न पूछ सके कि ऐसी हालत में तुम दोनों रोज़ दो-दो मील पैदल गये और आये । बस, उनकी आंखें भर आईं और वह डाक्टर लाने की बात सोचने लगे ।

रामचरण ने उनकी ओर देखकर कहा--"कुछ नहीं है बाबूजी, न खाने से सब ठीक हो जायगा ।"

: ५ :

निंदिया लागी

कालेज से लौटते समय मैं अक्सर अपने नये बंगले को देखता हुआ घर आया करता । उन दिनों वह तैयार हो रहा था । एक ओवरसियर साहब रोजाना, सुबह-शाम, देख-रेख के लिए आ जाते थे । वे मझले भैया के सहपाठी मित्रों में से थे । लम्बा क़द, गौर वर्ण, लम्बी नाक—खूबसूरत और मुख पर उल्लास का अभिनव आलोक । गम्भीर भी होते, तो प्रायः मालूम यही होता कि मुस्करा रहे हैं ।

नाम उनका बेनीमाधव था । और अवस्था उनकी अब पैंतालीस वर्ष से ऊपर जान पड़ती थी । मिस्त्री और मज़दूर, सब मिलकर, कोई पच्चीस-तीस व्यक्ति काम कर रहे थे । मज़दूरों में कुछ स्त्रियां भी थीं ।

एक दिन मैंने देखा छत कूटी जा रही है । कूटने वालों में स्त्रियां ही हैं, अधिकांश रूप से । दो पुरुष भी हैं, लेकिन वे ज़रा हटकर, एक कोने में हैं । स्त्रियां छत कूटती हुई एक गाना गा रही हैं । यों उनका गायन कुछ विशेष मधुर नहीं है, किन्तु अनेक सम्मिलित स्वरों के बीच में एक अत्यन्त कोमल स्वर भी है । तभी मैं उनके पास जाने को तत्पर हो गया । मुझे देखना था कि वह जो गाना गा रही है और जिसका कंठ इतना मधुर है, उसका रूप भी कुछ है या नहीं । मैं मानता हूं कि यह मेरी दुर्बलता थी, किन्तु उन दिनों मेरी समझ में यह बात कैसे आती ?

एकाएक पहले तो ओवरसियर साहब सामने आ गये । बोले—"आ गये छोटे भैया ।"

मैंने उनकी ओर देखकर जरा-सा मुस्करा दिया और कहा—"जान तो मुझे भी ऐसा ही पड़ता है ।"

हंसते हुए उन्होंने तब कहा—"लेकिन दरअसल आप आये नहीं । आप समझते हैं कि दुनिया की नजरों में जो आप यहां मौजूद हैं, इतने से ही मैं यह मान लूं कि आप पूरे सोलह आने भर आ गये हैं ? और जो कहीं आप अपना 'कुछ' छोड़ आये हों, तो ?"

वे तब इतना कहते-कहते मेरे निकट—बिलकुल निकट आ गये। बोले—"जब मैं अपने इंजीनियरिंग कालेज में पढ़ता था, तब मैं कैसा था, शान्ति जानिये, आपको देखकर जब मुझे उसकी याद आती है, तो जी मसोसने लगता है। तबीयत चाहती है कि अपने को क्या कर डालूं, जिससे कुछ शान्ति मिले। लेकिन फिर यही सोचकर सन्तोष कर लेता हूं कि मनुष्य की तृष्णा का अन्त नहीं है। न आकाश में, न महासागर के अतल में, न गिरि-गह्वर में—संसार में कहीं भी, कोई ऐसा स्थान नहीं मिल सकता, जहां पहुंचकर मनुष्य कामना से मुक्त हो सके।"

बेनी बाबू के मुख पर अगमनीय गम्भीरता की छाप थी, यद्यपि अपने विमल हास में वे उसे छिपाना चाहते थे। मैंने कहा—"आप मेरे अध्ययन की चीज़ हैं, यह मुझे आज मालूम हुआ।"

एक ओर चलते हुए वे बोले—"अभी आपको कुछ भी नहीं मालूम हुआ है।"

किन्तु बेनी बाबू को इतनी-सी बात से मेरे मन का कुतूहल अभी शांत नहीं हो पाया था, इसलिये मैं उनके पीछे चल दिया।

घूमते, काम देखते हुए, एक मिस्त्री के पास जाकर वे खड़े हो गये। वह आर्च बनाने जा रहा था। बोले—"देखो जी मिस्त्री, पत्तियां और फूल बनाना ही काफ़ी नहीं है। टहनी और उसमें उभड़े हुए कांटे भी दिखाने होते हैं। माना कि नकल नकल है, असल चीज़ वह कभी हो नहीं सकती, किन्तु असल चीज़ की जो असलियत है, गुण के साथ दुर्गुण भी, नकल में यदि उसको स्पष्ट न किया जा सका, तो वह नकल भी नकल नहीं हो सकती। बनाने में तुमको अगर दिक्कत हो, तो मैं नमूना दे जा सकता हूं, लेकिन मेरी तबीयत की चीज़ अगर तुम न बना सके, तो मैं कह नहीं सकता कि आगे चलकर तुम्हें उसका क्या फल भोगना पड़ेगा।"

मिस्त्री वृद्ध था। उसके बाल पक गये थे। उसकी आंखों पर पुरानी चाल का चश्मा चढ़ा हुआ था। बड़े गौर से वह बेनी बाबू की ओर देखने लगा; लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। तब बेनी बाबू वहां और अधिक ठहर न सके।

अब वे आंगन में एक टब के पास खड़े थे। नल का पानी टब में गिर रहा था। मैं थोड़ा पीछे था। जब उनके निकट पहुंचा, तो वे बोले—"अपने इस मिस्त्री की आंखों को देखा? वह कुछ कह नहीं सका था, लेकिन उसकी आंखों ने जो बात कह दी, मैं उसे सहन नहीं कर सका। वह समझता है, मैंने फल भोगने की बात कहके उसको चोट पहुंचाने, उसका अपमान करने की चेष्टा की है, किन्तु वह नहीं

जानता, जान भी नहीं सकता, कि मेरी बात का कोई उत्तर न देकर उसने मुझपर कैसा भयंकर आघात किया है ? एक वह नहीं, मालूम नहीं, कितने आदमी आपको ऐसे मिल सकते हैं, जो मुझे गलत समझते हैं । आज पन्द्रह वर्षों से, बल्कि और भी अधिक काल से, मुझे जहां-कहीं भी मकान बनवाने का काम पड़ा है, मैंने उस मिस्त्री को अवश्य बुलाया है । मैंने काम के सम्बन्ध में कभी-कभी तो उसे इतना डांटा है कि वह रो दिया है, तो भी कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि उसने मुझे तीखा उत्तर दिया हो । उसका वही पुराना चश्मा है, वैसी ही भीतर तक प्रविष्ट हो जानेवाली आंखें । उसने कभी मज़दूरी मुझसे तय नहीं की । और कभी ऐसा अवसर नहीं आया, जब काम समाप्त हो जाने पर, मज़दूरी के अतिरिक्त, उसने दस-पन्द्रह रुपये पुरस्कार न प्राप्त किये हों; किन्तु इन सब बातों को अच्छी तरह समझते हुए भी डांटना तो पड़ता ही है, क्योंकि उससे कलाकार की सुप्त कल्पना को जागरण मिलता है ।

अब बेनी बाबू घूमते-फिरते वहीं जा पहुंचे, जहां स्त्रियां छत कूट रही थीं, उन्होंने एकाएक जो हैटधारी हम लोगों को देखा, तो उनका गाना बन्द हो गया । तब मेरे मन में आया कि इससे तो यही अच्छा था कि हम लोग यहां न आते । और कुछ नहीं, तो संगीत का वह मृदुल स्वर तो कानों में पड़ता । और वह संगीत भी कैसा ? एकदम असाधारण । उसकी टेक तो कभी भूल ही नहीं सकती । जैसे नन्हीं वैसी ही भोली ।

"निंदिया लागी—मैं सोइ गई गुइयां ।"

बेनी बाबू ने खड़े-खड़े इधर-उधर देखा और कहा—"देखो इधर, इस तरह नहीं पीटना होता कि चोटों की आवाज़ का सिलसिला बिगड़ जाय । मुगरी की आवाज़ सारी की सारी एक बारगी एक साथ होनी चाहिए । और देखो, आज इस छत की पिटाई का काम खतम हो जाना चाहिए ।"

रामलखन बोला—"सरकार, आज कैसे पूरा होगा ? दिन ही कितना रह गया है ?"

"बको मत रामलखन । काम नहीं पूरा होगा, तो पैसा भी पूरा न होगा । समझते हो न ? काम का ही दूसरा नाम पैसा है ।"

रामलखन चुप रह गया ।

बेनी बाबू भी चल दिये । लेकिन चलने के साथ ही पिटाई की आवाज़, उसकी धमक, उसकी गति और चूड़ियों की खनक और 'निंदिया लागी' का स्वर अतिशय

गम्भीर हो गया । मैंने बेनी बाबू से कहा—"आप काम लेना खूब जानते हैं ।"

वे हँसते-हँसते बोले—"मैं जानता बहुत कुछ हूं—भैया, लेकिन जानना ही काफ़ी नहीं होता । ज्ञान से भी बढ़कर जो वस्तु है, उसको भी तो जानना होता है । और उसे मैं अभी तक जान नहीं सका ।"

मैंने पूछ लिया—"वह क्या ?"

वे बोले—'सत्य का ग्रहण ।"

मैंने कहा—"सिर्फ पहेली न कहिये, उसे समझाते भी चलिये ।"

वे तब एक पेड़ के नीचे, सड़क पर ही एक ओर, कुर्सियां डलवाकर बैठ गये और बोले—"ये स्त्रियां, जो यहां मज़दूरी करने आई हैं, कितने सवेरे घर से चली हैं और कब पहुंचेंगीं । कोई अपने घर में बच्चों को छोड़ आई है, किसी का पति खेत में काम करने गया होगा । किसी के कोई होगा ही नहीं । और काम करते करते अगर इनको उनकी सुधि आ जाती है और काम की गति में क्षणिक मन्दता उत्पन्न हो ही उठती है, तो वह भी आज की हमारी इस सामाजिक व्यवस्था को सहन नहीं है । और तारीफ़ यह है कि हम समझ लेते हैं कि हम बड़े ज्ञानी हैं । हम यही देखकर सन्तोष कर लेते हैं कि जो स्त्री यहां पर मज़दूरी कर रही है, हमको सिर्फ उसी से मतलब है, उसी की मजदूरी हम दे रहे हैं, किन्तु हम यह सोचने की ज़रूरत ही नहीं समझते कि वह स्त्री अपने जगत को लेकर क्या है ? जो बच्चा उसने उत्पन्न किया है ? वह भी तो अपने पालन-पोषण का भार अपनी मां पर रखता है, पर हम लोग यहां तक सोचना ही नहीं चाहते । हमारे स्वार्थों ने सत्य को कितनी निरंकुशता के साथ दबा रखा है ।"

बेनी बाबू चुप हो गये । एक ओर खुले अम्बर में, विहंगावलियां अपने पंखों को फैलाये नितान्त निर्बन्ध, हंसी-खुशी के साथ, उड़ी चली जा रही थीं । एक साथ हम दोनों उधर देखने लगे । किन्तु बराबर उधर देखने के बदले मैंने एक बार फिर बेनी बाबू को ही देखा । उनके मस्तक के ऊपर चंदोवा खुल आया था । उसमें नन्हें-नन्हें एक-आध बाल ही अवशिष्ट थे । वे अब सांध्य आलोक में चमक रहे थे । उनकी खुली आंखें यद्यपि चश्मे के भीतर थीं, तो भी मुझे प्रतीत हुआ, जैसे वे कुछ और भी फैल गई हैं । इसी क्षण वे बोले—"अब यह काम आगे न करूंगा । लेकिन.....।"

उनको यह वाक्य अधूरा रह गया । जान पड़ा, वे कोई निश्चय कर रहे हैं और रुक-रुक जाते हैं । रुक इसलिये नहीं जाते कि रुकना चाहते हैं । रुक इसलिये जाते

हैं कि रुकना नहीं चाहते।

तभी वे फिर बोले—"तुम उस बात को अभी समझ नहीं सकोगे; लेकिन ऐसी बात नहीं है कि उस बात के समझने की तुम्हारी क्षमता कुन्द है। देखता हूं, तुम विचारशील हो और तभी मैं क़हना भी चाहता हूं कि आदमी तो अपने विश्वासों को लेकर खड़ा है, लेकिन जो आदमी अपने विश्वासों को लेकर भी नहीं खड़ा होता, वह भी क्या आदमी है ? वह आदमी नहीं है, वह पशु है—पशु। लेकिन वैसे कहूं कि पशु भी अपने विश्वासों के विरुद्ध खड़ा हो सकने वाला प्राणी है। वह तो... वह तो, बल्कि अपनी प्रवृत्तियों का ही स्वरूप होता है। और यह मनुष्य छिः, इससे भी अधम क्या कोई स्थिति है ?"

मैंने देखा, यह वातावरण तो अब अतिशय गम्भीर हो गया है। और उन दिनों इस तरह की निरी गम्भीरता मुझे ज़रा कम पसन्द आती थी, बल्कि साथी लोग जब ऐसे व्यक्तियों का मज़ाक उड़ाते, तो उस दल में मैं भी सम्मिलित हो जाया करता था। बात यह थी कि उस समय एक दूसरा दृष्टिकोण हम लोगों के सामने रहता था। हम सब यही मानते थे कि जीवन तो हँसी-खेल की चीज़ है सर्वथा अनिश्चित् और चरम अकल्पित जीवन के थोड़े से दिनों को रोना-रोने या सोच-विचार में निपीड़ित-निर्जीव कर डालने में कौन सी महत्ता है ?

इसीलिये मैंने कह दिया—"इन लोगों के गानों में बीच का यह—हां, यह स्वर मुझे बड़ा कोमल लगता है।"

निमेषमात्र में, सम्यक बदल कर—

'जाओ नज़दीक से जाकर सुन आओ। हैट यहीं रख जाओ। फिर भी अगर वे गाना बन्द करे दें, तो कहना काम में हर्ज नहीं होना चाहिये, क्योंकि गाने के साथ छत कूटने का काम अधिक अच्छा होता है, ऐसा मैं सुनता आया हूं।'—बेनी बाबू ने मुस्कराते हुए कहा।

मैं चला गया। चुपचाप बहुत धीरे-धीरे, पैर सम्हाल-सम्हाल कर। तो भी उनको मालूम हो ही गया। काम की गति में कुछ तीव्रता ज़रूर जान पड़ी, किन्तु गाना बन्द हो गया।

मैंने कहा, "तुम लोगों ने गाना क्यों बन्द किया ?"

खिलखिल के कुछ मदिर कलहास। कभी इधर-कभी उधर।

किसीने अपनी सखी से कहा, उसे ज़रा सा धक्का देकर—"गा री पत्ती, चुप

क्यों हो गई ?"

"तू ही क्यों नहीं गाती ? छोटे भैया के सामने......."

"हूँ, बड़ी लाजवन्ती बनी है। जैसे दुलहे का मुंह ही न देखा हो।"

मैंने कहना चाहा—'लड़ो मत। मैं चला जाता हूं।' लेकिन मैं कुछ कह न सका। चुपचाप चला आया। चला तो आया, किन्तु उस खिल-खिल और अपने सामने गाने से लजानेवाली उस पत्ती को मैंने फिर देखने की चेष्ट नहीं की।

कैसे उल्लास के साथ आया था, किन्तु कैसा भीषण द्वन्द्व लेकर चल दिया।

बेनी बाबू ने बड़े प्यार से पूछा—"कह जाओ"

मैंने कहा—"क्या कह जाऊँ ? वही बात हुई। उन लोगों ने गाना बन्द कर दिया।"

"फिर तुमने यह बात नहीं कही।"

"उसे मैं कह नहीं सका।"

"तो यह कहो कि तुम खुद ही लजा गये।"

मैं चुप रहा। जिसने कभी चोरी नहीं की, जो यह भी नहीं जानता कि चोरी कैसे की जाती है, वह चीज़ क्या है, यदि वह कभी उसके दलदल में पड़ जायगा, तो उससे सफ़ाई के साथ निकल ही कैसे सकेगा ? वह तो निश्चयपूर्वक फंस जायगा। वही गति मेरी हुई। क्या मैं जानता था कि बेनी बाबू मुझे ऐसी जगह ले जायंगे, जहां पहुंचकर फिर मुक्ति का कोई मार्ग ही दृष्टिगत न होगा ?

बेनी बाबू बोले--"अच्छा, एक काम कर आओ। रामलखन से कहना कि अगर आज यह काम किसी तरह पूरा होता न दीख पड़े, तो कल ही पूरा कर डालना होगा। बेनी बाबू से मैंने कह दिया है कि मज़दूरों से उतना ही काम लिया जाय, जितना वे कर सकें।"

मैं उनकी ओर देखता रह गया। मेरे मन में आया—यह आदमी है कि देवता ?

मुझे अवाक् देखकर उन्होंने पूछा—"सोचते क्या हो ?"

मैंने कहा—"कुछ नहीं। इतने दिन से आपका परिचय प्राप्त है, किन्तु कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि आपको इतने निकट से देख पाता।"

वे बोले—"यह सब कोई चीज़ नहीं है, छोटे भैया। न्याय और सत्य से हम कितनी दूर रहते हैं, शायद हम खुद नहीं जानते। अच्छा जाओ जो काम तुम्हें दिया

गया है उसे पूरा कर आओ ।

मैं फिर उसी छत पर जा पहुंचा, पर अब की बार मैंने देखा, गाना चल रहा है । लेकिन एक ही गाना तो दिन-भर चल नहीं सकता । तो भी मुझे उसी गाने के सुनने की इच्छा हो आई । साथ ही मैंने यह भी सोच लिया कि अभी कुछ समय पहले बेनी बाबू ने कहा था, मनुष्य की कामनाओं का अन्त नहीं है ।

मैंने जो रामलखन को बुलवाया, तो वह सिटपिटा गया । बोला—"छोटे सरकार क्या हुक्म है ?"

मैंने कहा—"बेनी बाबू क्या तुम लोगों से कुछ ज्यादा सख्ती से काम लेते हैं ?"

वह चुप ही बना रहा, सत्यकृष्ण कुछ भी नहीं कह सका । तब मैंने समझ लिया, डर के कारण वह उनके विरुद्ध कुछ कहना नहीं चाहता, इसीलिये चुप है, लेकिन जब मैंने कहा—"मैं उनसे कुछ कहूंगा नहीं । मैं तो सिर्फ असल बात जानना चाहता हूं । बिलकुल निडर होकर बतलाओ ।"

तब उसने कहा—"काम सख्ती से लेते हैं, तो मज़दूरी भी तो दो पैसा ज़्यादा और वक्त पर देते हैं । ऐसे मालिक मिलें तो मैं जिन्दगी भर उनकी गुलामी करूँ ।"

मैंने कहा—"तुम ठीक कहते हो । उन्होंने मुझसे कहला भेजा है कि अगर काम आज नहीं पूरा होता है, तो कल ही पूरा कर डालना । ज़्यादा तकलीफ़ उठाने की ज़रूरत नहीं है ।"

रामलखन बोला—"पर छोटे भय्या, उन्होंने पहले ही बहुत सोच-समझकर हुकुम दिया था । काम अगर आज पूरा न होता तो कूटने के लिये चूना कल हम लोगों को इस हालत में न मिलता । वह सूख जाता । तब उसपर कुटाई ठीक तरह से कैसे होती ? इसके सिवा कल गुड़ियों का त्योहार है—छुट्टी का दिन है । मैंने पीछे जो सोचा, तो मुझे इन सब बातों का ख्याल आ गया । काम पूरा हो जायगा । बहुत कुछ तो हो भी गया है । थोड़ा सा ही बाक़ी रह गया है । वह भी शाम होते-होते पूरा हो जायगा । तकलीफ तो थोड़ी हुई किसी-किसी के हाथों में छाले पड़ गये, लेकिन यह बात उनसे जाकर न कहें सरकार, इतनी बात मेरी भी रख लें ।

रामलखन की बात मानकर सचमुच मैंने बेनी बाबू से यह नहीं कहा कि स्त्रियों के हाथों में छाले पड़ गये हैं ।

किन्तु उसी दिन, सायंकाल एक ओर जीने की दीवार गिर गई । छुट्टी हो गई । मज़दूर लोग इधर-उधर से आ-आकर जाने लगे थे कि अररर धम् का भीषण

स्वर और एक क्षीण 'आह'।

लोग दौड़ पड़े। लोग गिने भी गये। सब मिलाकर उन्नतीस आदमी आज काम पर थे, लेकिन हैं केवल सत्ताईस।

"तो दो आदमी दब गये क्या ?"

"हां, यह हलका स्वर जो आ रहा है यह ! ..यह !

ईंटें उठाई जाने लगीं, तो एक स्त्री ने कहा—हाय। हाय पत्ती है—पत्ती। तभी मैं सोच रही थी—वह दीख नहीं पड़ती, शायद आगे निकल गई। हाय यह तो चल बसी।"

उससे कौन कहता कि हां, वह आगे निकल गई।

लेकिन एक क्षीण स्वर तब भी ध्वनित होता रहा।

"अरे और उठाओ ईटों को। हां, इस खंजड़ को। अभी एक आदमी और भी तो है।"

एक साथ कई आदमियों ने मिलकर एक दीवार के टुकड़े को उठाया। वह ईंटों के ऊपर गिरा था और बीच में थोड़ी जगह शेष रह गई थी। उसी में मुड़ा हुआ अचेत मिला गिरधर।

कुछ दिनों में गिरधर अच्छा हो गया। उसकी एक रीढ़ टूट गई थी; लेकिन उसका जीवन उसकी रीढ़ से अधिक बलिष्ठ था।

उस बंगले को, फिर आगे, बेनी बाबू नहीं बनवा सके। कुछ दिनों तक काम बन्द रहा और फिर वे बीमार पड़ गये।

मनुष्य का यह जीवन क्या इतना अस्थिर है ? क्या वह फूल के बल से भी अधिक मृदुल है ? क्या वह छुई-मुई है ? उन दिनों मैं यही सोचता रहा था। वे बीमार थे, और उनकी बीमारी बढ़ती जाती थी। मैं देख रहा था, शायद बेनी बाबू तैयारी कर रहे हैं। लेकिन एक दिन मैंने उन्हें दूसरे रूप में देखा। मैंने देखा कि मृत्यु को उन्होंने मसल डाला है, पीस डाला है। वह छटपटा रही है। वह भाग जाना चाहती है।

वे एक पलंग पर लेटे हुए थे, बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। उनके पास एक नौजवान बैठा हुआ था। वह मौन था, और बेनी बाबू उससे कुछ पूछ रहे थे। उसी क्षण मैं पहुंच गया। वे उठने को हुए, तो नौकर ने उन्हें उठा दिया और उनके पीछे तकिये लगा दिये। पहले आंखों पर चश्मा नहीं था, अब उन्होंने चश्मा चढ़ा

लिया ।

संकेत पाकर मैं उनके पास ही कुरसी डालकर बैठ गया था ।

वे बोले—"सुनते हो मुल्लू, मैं तुमको रोने नहीं दूंगा । रोने दूं, तो मैं अपने को खो दूंगा । लेकिन मैं इतना सस्ता नहीं हूं । मैं मरना नहीं चाहता, इसीलिये मैं तुमको प्रसन्न देखना चाहता हूं । बतलाओ तुम किस तरह से प्रसन्न हो सकते हो ? मैं और साफ़ कर दूं ? मैं तुमको कुछ देना चाहता हूं । बोलो तुम कितने रुपये पाकर खुश हो सकते हो ? लेकिन तुम यह सोचने की भूल न करना कि ये रुपये तुम्हारी स्त्री की कीमत है । एक स्त्री—एक नवयुवती, एक सुन्दरी—को क्या रुपयों से तोला जा सकता है ? छिः यह तो एक मूर्खता की बात है—जंगलीपन की । लेकिन मैंने अभी तुमको बतलाया न, मैं तुमको खुश करना चाहता हूं ।"

ओह "एक नवयुवती—एक सुन्दरी ।"

"तो क्या पत्नी सुन्दर थी ?"

"तो उसका कण्ठ ही कोमल न था, वरन्......"

बेनी बाबू बोले—"मैं जानता हूं कि तुम कुछ कहोगे नहीं ।"

"अच्छा, तो मैं ही कह देता हूं—उसके बच्चे की परवरिश के लिए, दस रुपये हर महीने मुझसे बराबर ले जाया करना । समझे । यह...लो दस रुपये । आज पहली तारीख है । हर महीने की पहली तारीख को ले जाया करना ।"

जेब से नोट निकालकर उन्होंने मुल्लू के आगे फैंक दिया । मुल्लू तब कितना खुश था, इसको मैंने जाना । किन्तु बेनी बाबू ने जितना कुछ जाना, उसको मैं न जान सका ।

मुल्लू जब छलकते आनन्दाश्रुओं के साथ चल दिया, तो बेनी बाबू बोले—"मेरा ख्याल है, अब यह खुश रहेगा । क्यों ? तुम क्या सोचते हो ?"

मैं चकित था, प्रतिहत था, अभिभूत भी था, तो भी मैंने कह दिया—"आपने यह क्या किया ?"

"ओह तुम मुझ से पूछते हो, छोटे भय्या । यह क्या किया ? यह मैंने अपने को भुलाने के लिये किया है, क्योंकि मनुष्य अपने को भुलावे में रखने का अभ्यासी है । मैंने देखा—मैं एक भूल कर रहा हूं । मैं मृत्यु को बुला रहा हूं । तब मैंने सोचा—मैं ऐसी भूल नहीं करूंगा, जिसमें अपने आपको भी मैं भुला सकूं । जीवन में एक ऐसा क्षण भी आता है जब हमको अपने-आपको भुलाना पड़ता है । यह मेरा

ऐसा ही क्षण है । लेकिन यह मेरी भूल नहीं है । यह तो मेरा नवजीवन है—जागरण ।"

यह कथा यहीं समाप्त हो गई है । किन्तु इस कथा के प्राण में जो अन्तर्कथा है, उसी की बात कहता हूं । उपर्युक्त घटना के पीछे कुछ वत्सर और जुड़ गये हैं । यह बंगला अब मुझे रहने के लिये दिया गया है । मैं अब अकेला ही इसमें रहता हूं । कई सहस्त्र पुस्तकों के महत्-ज्ञान से आवृत मैं—लोग कहते हैं--प्रोफेसर हूं । जीवन और जगत् का तत्त्वदर्शी । लेकिन मैं अपनी समस्या किससे कहूं—अपना अन्तर किसको खोलकर दिखाऊं । बच्चे सुनें तो हंसें और बीबी सुने तो कहे--पागल हो गये हो ।

कभी-कभी रात को घोर सन्नाटे में स्वप्नाविष्ट-सा मैं कुछ अस्पष्ट ध्वनियां सुनने लगता हूं । कोई खिलखिल हंस रही है । कोई धक्का देकर कह रही है—गा री पत्ती और चूड़ियां खनक उठती है, छत कुटने लगती है और एक कोमल, अत्यन्त कोमल गायन-स्वर फूट पड़ता है । —'निंदिया लागी... ।'

और उसके हाथों में जो छाले पड़ गये हैं, वे वहां से उठकर मेरे हृदय से आकर चिपक गये हैं ।

: ६ :

प्रायश्चित्त

अगर कबरी बिल्ली घर-भर में किसीसे प्रेम करती थी तो रामू की बहू से, और अगर रामू की बहू घर-भर में किसी से घृणा करती थी तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू दो महीना हुआ, मायके से प्रथम बार ससुराल आई थी, पति की प्यारी और सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका। भंडार-घर की चाबी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा और रामू की बहू घर में सब कुछ। सासजी ने माला लिया और पूजा-पाठ में मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भण्डार-घर खुला है तो कभी भण्डार-घर में बैठे-बैठे सो गई। कबरी बिल्ली को मौका मिला, घी-दूध पर अब वह जुट गई। रामू की बहू की जान आफ़त में और कबरी बिल्ली के छक्के-पंजे। रामू की बहू हांड़ी में घी रखते-रखते ऊंघ गई और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढक कर मिसरानी को जिन्स देने गई और दूध नदारद। अगर बात यहीं तक रह जाती तो भी बुरा न था, कबरी रामू की बहू से कुछ ऐसा परक गई थी कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार।

रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी कटोरी पहुंची और रामू जब आये तब कटोरी साफ चटी हुई। बाज़ार से बालाई आई और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया, बालाई ग़ायब। रामू की बहू ने तय कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली ही। मोरचाबन्दी हो गई और दोनों सतर्क। बिल्ली फंसाने का कटघरा आया, उसमें दूध, बालाई, चूहे, और भी बिल्ली को स्वादिष्ट लगनेवाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गये, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगर्मी दिखलाई। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी; पर अब वह साथ लग गई, लेकिन इतने फासले पर कि रामू की बहू उसपर हाथ न लगा सके।

कबरी के हौंसले बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया । उसे मिलती थी सास की मीठी झिड़कियां, और पति देव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन ।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई । पिश्ता, बादाम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में औटाए गये, सोने का वर्क चिपकाया गया और खीर से भर कर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊँचे ताक पर रखा गया, जहां बिल्ली न पहुंच सके । रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई ।

उधर कमरे में बिल्ली आई, ताक के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूंघा, माल अच्छा है, ताक की ऊँचाई अन्दाज़ी और रामू की बहू पान लगा रही है । पान लगाकर रामू की बहू सासजी को पान देने चली गई और कबरी ने छलांग मारी, पंजा कटोरे में लगा और कटोरा झनझनाहट की आवाज़ के साथ फर्श पर ।

आवाज़ रामू की बहू के कान में पहुंची, सास के सामने पान फेंक कर वह दौड़ी, क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़े, खीर फर्श पर और बिल्ली डट कर खीर उड़ा रही है । रामू की बहू को देखते ही कबरी चम्पत ।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बांस न बजे बाँसुरी । रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली । रात भर उसे नींद न आई, किस दांव से कबरी पर वार किया जाय कि फिर जिन्दा न बचे, यही पड़े-पड़े सोचती रही । सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है ।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुस्कराती हुई वह उठी, कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गई । रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाज़े की देहरी पर रखकर चली गई । हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है । मौका हाथ में आ गया । सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया । कबरी न हिली न डुली, न चीखी न चिल्लाई, बस एक दम उलट गई ।

आवाज़ जो हुई तो महरी झाडू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और सास पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गईं । रामू की बहू सर झुकाए अपराधिनी की भांति बातें सुन रही है ।

महरी बोली—"अरे राम बिल्ली तो मर गई । मांजी बिल्ली की हत्या बहू से

हो गई, यह तो बुरा हुआ ।"

मिसरानी बोली—"माँजी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है । हम तो रसोई न बनावेंगी, जबतक बहू के सिर हत्या रहेगी ।"

सासजी बोली—"हां ठीक तो कहती हो, अब जबतक बहू के सर से हत्या न उतर जाय तबतक न कोई पानी पी सकता है, न खाना खा सकता है । बहू यह क्या कर डाला ?"

महरी ने कहा—"फिर क्या हो, कहो तो पण्डितजी को बुलाय लाईं ।"

सास की जान-में-जान आई—"अरे हां, जल्दी दौड़ के पंडितजी को बुला ला ।"

बिल्ली की हत्या की ख़बर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गई । पड़ोस की औरतों का रामू के घर में तांता बंध गया । चारों तरफ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाये बैठी ।

पंडित परमसुख को जब यह ख़बर मिली उस समय वे पूजा कर रहे थे । खबर पाते ही वे उठ पड़े—पंडिताइन से मुस्कराते हुए बोले—"भोजन न बनाना । लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली । प्रायश्चित्त होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा ।"

पंडित परमसुख चौबे छोटे-से मोटे-से आदमी थे । लम्बाई चार फीट दस इंच और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच । चेहरा गोल-मटोल, मूँछ बड़ी-बड़ी, रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुंचती हुई ।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पंसेरी खुराक़ वाले पंडितों को ढूंढा जाता था तो पंडित परमसुखजी को उस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था ।

पंडित परमसुख पहुंचे, और कोरम पूरा हुआ । पंचायत बैठी—सासजी, मिसरानी, किसनू की मां, छन्नू की दादी और पंडित परमसुख । बाकी स्त्रियां बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं ।

किसनू की मां ने कहा—"पंडितजी, बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है ?"

पंडित परमसुख ने पन्ना देखते हुए कहा—"बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बतलाया जा सकता, वह महूरत भी मालूम हो जब बिल्ली की हत्या हुई तब नरक का पता लग सकता है ।"

"यही कोई सात बजे सुबह"—मिसरानीजी ने कहा ।

पंडित परमसुख ने पन्ने के पन्ने उलटे, अक्षरों पर उंगलियां चलाई, मत्थे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुंधलापन आया। माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गम्भीर हो गया, "हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! बड़ा बुरा हुआ, प्रातःकाल ब्रह्म-मुहूर्त में बिल्ली की हत्या ! घोर कुम्भीपाक नरक का विधान है ! रामू की मां यह तो बड़ा बुरा हुआ।"

रामू की मां की आंखों में आंसू आ गए, "तो फिर पंडितजी अब क्या होगा, आप ही बतलायें ?"

पंडित परमसुख मुस्कराये—"रामू की मां, चिन्ता की कौन-सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं ? शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान है सो प्रायश्चित्त से सब कुछ ठीक हो जायगा।"

रामू की मां ने कहा—"पंडितजी उसी लिए तो आपको बुलवाया था, अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाय ?"

"क्या किया जाय—यही एक सोने की बिल्ली बनवाकर बहू से दान करवा दी जाय—जबतक बिल्ली न दे दी जायगी तबतक तो घर अपवित्र रहेगा, बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिन का पाठ हो जाय।"

छन्नू की दादी—"हां, और क्या पंडितजी ठीक कहते हैं, बिल्ली अभी दान दे दी जाय और पाठ फिर हो जाय।"

रामू की मां ने कहा—"तो पंडितजी, कितने तोले की बिल्ली बनवाई जाय ?"

पंडित परमसुख मुस्कराये, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—"बिल्ली कितने तोले की बनवाई जाय ? अरे रामू की मां, शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्ली के वज़न भर सोने की बिल्ली बनवाई जाय। लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही। सो रामू की मां, बिल्ली के तौल भर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि बिल्ली बीस-इक्कीस सेर से कम क्या होगी; हां कम-से-कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवाके दान करवा दो, और आगे तो अपनी-अपनी श्रद्धा।"

रामू की मां ने आंखें फाड़कर पण्डित परमसुख को देखा—"अरे बाप रे ! इक्कीस तोला सोना ! पण्डितजी यह तो बहुत है, तोला भर की बिल्ली से काम निकलेगा ?"

पंडित परमसुख हंस पड़े—"रामू की मां ! एक तोला सोने की बिल्ली। अरे

रुपए का लोभ बहू से बढ़ गया ? बहू के सिर बड़ा पाप है—इसमें इतना लोभ ठीक नहीं ।"

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया ।

इसके बाद पूजा-पाठ की बात आई । पंडित परमसुख ने कहा—"उसमें क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिए हैं ? रामू की मां, मैं पाठ कर दिया करूंगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना ।"

"पूजा का सामान कितना लगेगा ?"

"अरे कम-से-कम सामान में हम पूजा कर देंगे, दान के लिए करीब दस मन गेहूं, एक मन चावल, एक मन दाल, मन भर तिल, पांच मन जौ और पांच मन चना, चार पसेरी घी और मन-भर नमक भी लगेगा । बस इतने से काम चल जायगा ।"

"अरे बाप रे ! इतना सामान, पंडितजी इसमें तो सौ-डेढ़ सौ रुपया खर्च हो जायगा ।"—रामू की मां ने रुआसी होकर कहा ।

"फिर इससे कम में तो काम न चलेगा । बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की मां ! खर्च को देखते वक्त पहले बहू के पाप को तो देख लो । यह तो प्रायश्चित्त है, कोई हँसी-खेल थोड़े ही है—और जैसी जिसकी मरजादा प्रायश्चित्त में, उसे वैसा खर्च भी करना पड़ता है । आप लोग कोई ऐसे-वैसे थोड़े हैं, अरे सौ-डेढ़-सौ रुपया आप लोगों के हाथों का मैल है ।"

पंडित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए, किसनू की मां ने कहा—"पंडित जी ठीक तो कहते हैं, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो है ही नहीं—बड़े पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिए ।"

छन्नू की दादी ने कहा—"और नहीं तो क्या, दान-पुन्न से ही पाप कटते हैं । दान-पुन्न में किफायत ठीक नहीं ।"

मिसरानी ने कहा—"और फिर माजी, आप लोग बड़े आदमी ठहरे । इतना खर्च कौन आप लोगों को अखरेगा ?"

रामू की मां ने अपने चारों ओर देखा—सभी पंच पंडितजी के साथ । पंडित परमसुख मुस्करा रहे थे । उन्होंने कहा—"रामू की मां, एक तरफ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरी तरफ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा सा खर्चा है । सो उससे मुंह न मोड़ो ।"

एक ठण्डी सांस लेते हुए रामू की मां ने कहा, "अब तो जो नाच नचाओगे

नाचना ही पड़ेगा ।

पंडित परमसुख ज़रा कुछ बिगड़कर बोले—"ऱामू की मां ! यह तो खुशी की बात है, अगर तुम्हें यह अखरता है तो न करो—मैं चला ।" —इतना कहकर पंडितजी ने पोथी-पत्रा बटोरा ।

"अरे पंडित जी, रामू की मां को कुछ नहीं अखरता--बेचारी को कितना दुःख है । बिगड़ो न ।" मिसरानी, छन्नू की दादी और किसनू की मां ने एक स्वर में कहा ।

रामू की मां ने पंडितजी के पैर पकड़े और पंडितजी ने अब जम कर आसन जमाया ।

"और क्या हो ?"

"इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपए और इक्कीस दिन तक दोनों वक्त पांच-पांच ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा ।" कुछ रुककर पंडित परमसुख ने कहा—"सो इसकी चिन्ता न करो, मैं अकेले दोनों समय भोजन कर लूंगा और मेरे अकेले भोजन करने से पांच ब्राह्मण के भोजन का फल मिल जायगा ।"

"यह तो पंडितजी ठीक कहते हैं, पंडितजी की तोंद तो देखो ।"—मिसरानी ने मुस्कराते हुए पंडितजी पर व्यंग किया ।

"अच्छा तो फिर प्रायश्चित्त का प्रबन्ध करवाओ रामू की मां, ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ—दो घण्टे में मैं बनवाकर लौटूंगा तबतक सब पूजा का प्रबन्ध कर रखो—और देखो, पूजा के लिए—"

पंडितजी की बात ख़तम भी न हुई थी कि महरी हांफती हुई कमरे में घुस आई, और सब लोग चौंक उठे । रामू की मां ने घबड़ा कर कहा—"अरी क्या हुआ री ?"

महरी ने लड़खड़ाते हुए स्वर में कहा—"माँजी, बिल्ली तो उठ कर भाग गई ।"



: ७ :

पटाक्षेप

सी० आई० डी० विभाग में मेरा यथेष्ट मान था । अपने आश्चर्यजनक कार्यों से मैंने अपने डिपार्टमेंट में खलबली मचा दी थी । चारों ओर मेरी धूम थी । मैंने ऐसे-ऐसे गुप्त भेद खोले थे जिनके कारण मेरी कार्यपटुता और बुद्धिमत्ता का लोहा गवर्नमेंट मान गई थी । जो कार्य जासूसी-विभाग में कोई कर्मचारी न कर पाता, वह मेरे सुपुर्द किया जाता था । इस प्रकार जासूसी दुनिया में मेरी शोहरत थी ।

कीर्ति के साथ लक्ष्मी भी मुझपर प्रसन्न थी । दुःसाध्य कार्यों के बड़े-बड़े पारितोषिक प्राप्त होते थे । मेरी जैसी वेतन में वृद्धि किसी भाग्यशाली को ही मिली होगी । अतः मेरे जीवन में आराम और ऐश्वर्य के पर्याप्त साधन मौजूद थे । कीमती-कीमती पोशाकें पहिनता, राजे-महाराजों के मुक़ाबिले का भोजन करता ।

मेरे रहने का बंगला भी मेरे यश और वैभव के अनुकूल ही था । दीवारों पर लगे हुए क़द्दे-आदम आईने और बहुमूल्य कलापूर्ण चित्र आंखों में चकाचौंध उत्पन्न करते थे । कमरों में फ़ारस के गुलगुले गलीचों का फर्श बिछा था । चारों ओर के बरामदों में संगमरमर का सुन्दर चिकना फर्श था, जिसपर चलते समय फिसलने का भय बना रहता था । बिजली की बत्तियों के झल-मल करते हुए झाड़ छतों में लटकते थे । कमरे खुशनुमा गुलदस्तों और सुगन्धित लेवेन्डरों की सुगन्धि से भरे रहते थे । दरवाज़े पर रंग-बिरंगे बूटेदार विदेशी रेशम के परदे शोभा बढ़ा रहे थे । अद्भुत कारीगरी का फर्निचर सोने में सुगन्ध का काम करता था । 'डायनिंग हाल' की टेबिलों पर चमचमाते शीशों के गिलास और भांति-भांति की क़ीमती शराब की बोतलें क़रीने से चुनी रहती थीं ।

अपनी कार्यपटुता और बुद्धि के बल पर यथेष्ट धन कमाता और दोनों हाथों से रुपया लुटाता, संसार ही में स्वर्गीय सुख का मैं आनन्द उठाता था ।

चारों ओर विप्लवकारियों की धूम थी । आज इस षड्यन्त्र का भाण्डा फूटा, इतने नवयुवक गिरफ्तार हुए, कल अमुक केस में, किसी को बीस वर्ष की सज़ा किसी को काला पानी और फांसी । उन दिनों अख़बारों के कालम के कालम इसी विषय में रंगे रहते थे । और बड़े-बड़े गुप्त षड्यन्त्रों का भाण्डा-फोड़ करने का सेहरा मेरे ही सिर रहता था ।

किसी षडयन्त्र का किंचित् भी समाचार मिलने से, जबतक मैं पूर्णतः उस रहस्य को ढूंढ़ न निकालता मुझे चैन न मिलता था । इस छान-बीन में मुझे कष्ट भी कम नहीं उठाने पड़ते थे । ज़ायकेदार कबाब-कोरमे के स्थान पर महीनों सूखी दाल-रोटी पर ही निर्भर रहना पड़ता था । शराब के महीनों दर्शन न होते थे । मुलायम मखमली गद्दों के स्थान पर सूखी घास के बिछौने पर ही सन्तोष करना पड़ता था ।

'उक्त गिरोह में सम्मिलित हुए बिना भीतरी भेद पाना असम्भव है ।' बस, तुरन्त ही बंगाली कुर्त्ता पहनकर मुझे बंगाली बनते देर न लगती थी । किस की सामर्थ्य थी, जो मेरे बहुरूपियेपन पर किंचित् भी सन्देह करने का साहस करता ? क़ौम के प्रति सहानुभूति के भाव प्रकट करने बैठता तो लोगों के हृदय में अपने पति श्रद्धा का स्त्रोत बहा देता ।

देश की दुर्दशा का रोना रोता तो नवयुवकों की रग-रग जोश से फड़क उठती । आज़ादी के वह ज़ोरदार तराने अलापता कि नीरस हृदय भी फड़क उठते—'हाय हमारी मातृभूमि गुलामी की बेड़ियों में जकड़ी है और हम बेहोशी की नींद सो रहे हैं, हमारे देश के अधिकांश निवासी भूखों मर रहे हैं, उन्हें दिन में एक समय भी आधे पेट भोजन मयस्सर नहीं होता, और हम नवयुवक इस अन्याय को आंखों देखकर भी ख़ामोश बैठे हैं ! धिक्कार है हमारे इस जीवन को !

भाइयों ! हम बहुत सो चुके, अब हमें कार्य-क्षेत्र में अग्रसर होना चाहिए । रूस का इतिहास हमारे सामने है । भारत माता हमारी कायरता पर खून के आंसू रो रही है । बस, बहुत जुल्म सह लिया । अब उठो, वीरता का जामा पहिनो और साहस से काम लो । विजय हमारे साथ है । याद रखो, हम नवयुवक ही भारत को आज़ाद कर सकते हैं । ये बड़े-बड़े प्रसिद्ध लीडर कुछ नहीं । स्वयं गांधीजी भी कुछ नहीं कर सकते । इन लोगों में अभी वास्तविक शक्ति ही जाग्रत नहीं हुई है । अहिंसा के नारे बुलन्द करके जनता को कायरता का पाठ पढ़ा रहे हैं ।'

मेरे इन शब्दों में वह जादू था जो नवयुवकों के दिलों पर बिजलियां गिराता

था। मुझपर सन्देह करना तो दूर रहा, भोले नवयुवक मुझे अपने दल का मुखिया बनाने को व्यग्र हो उठते थे। मैं भी देश-भक्त सैनिक के रूप में उक्त पार्टी का सरदार बन बैठता। मेरे कारण एक के स्थान पर दस और एकत्रित हो जाते थे। और अवसर आने पर नाटक का पर्दा उलटकर मैं पंख झाड़ अलग खड़ा हो जाता था। मेरे लिए मानो कुछ हुआ ही नहीं।

गवर्नमेंट से पुरस्कार मिलते, प्रशंसा मिलती और जासूसी विभाग के आदमी बधाई के तार भेजते। मैं फूला न समाता। गवर्नमेन्ट प्रशंसा के तगमे बख्शीश करती। मैं गर्व की हँसी हँसता था। अदालत मेरे फंसाये शिकारों को मौत के घाट उतारती, मैं उन्हें देखकर मुस्कराता।

अंनेक माताओं के भोले-भाले लाल मेरे कौशल से ख़ाक में मिल जाते, कितने घर तबाह हो जाते, कितनी बहनें विधवा हो जातीं, कितनी माताएं पुत्रहीना बन जाती किन्तु मुझे इसका किंचित भी मलाल न था। देश को प्रज्वलित अग्नि की भट्टी में झोंक कर निर्दोष भाइयों के खून से हाथ रंग कर ही मैं सन्तुष्ट था।

अपने सिवा मैं क़ानून को भी तो अन्याय करने को विवश करता था--न्याय के सम्मुख ऐसे भीषण षड्यन्त्र रचे जाने का अभियोग है। वह षड्यन्त्र-कारियों को दंड देगा ही। पर कौन जाने इस षडयन्त्र के निर्माण में सबसे अधिक भाग तो मेरा ही है। मेरे काले कारनामे देखे जायं, तो संसार के देशद्रोहियों में, विश्वासघातकों में मेरा नाम सर्वोच्च रहेगा। अनेक षड्यन्त्रों की तो बुनियाद ही मेरे द्वारा पड़ती थी। मेरा ध्येय था अपनी कारगुज़ारी दिखाना और धन कमाना। अधिक क्या कहूं, मेरे कारनामों पर परदा पड़ा रहना ही उचित है, कदाचित गवर्नमेन्ट भी मेरे भेद जानती, तो फांसी से कम सज़ा न देती।

सन् १६३० का ज़माना आया, और देश ने महान् क्रान्ति के युग में प्रवेश किया। महात्मा गान्धी के नमक कानून तोड़ते ही देश भर में आन्दोलन की आंधी आ गई। सारा देश परिवर्तन का बाना पहिन सत्याग्रह संग्राम में अग्रसर हुआ, जासूसी विभाग में हलचल मच गई। कांग्रेस सम्बन्धी गुप्त समाचार संग्रह करने को अनेक सी० आई० डी० विभाग अलग स्थापित किए गए। मेरा भी सम्बन्ध ऐसे ही एक विभाग से था।

सत्याग्रह-आन्दोलन कांग्रेस का खुला युद्ध था। अहिंसात्मक युद्ध में गुप्त बातों की आवश्यकता ही नहीं थी, किन्तु गवर्नमेंट तो साधारण-से-साधारण बात की भी

जानकारी और प्रमाण रखने को व्यग्र थी। प्राणपण से आन्दोलन दबाने की चेष्टा की जा रही थी। कर्मचारी हैरान थे। राज्य की सत्ता हिली जा रही थी।

मैं तन-मन से अपने कार्य में लग गया। इस बार भी देश-भक्ति का नाश करना था; परन्तु दूसरे सिद्धान्त पर—जब मार-काट, क्रान्ति, विद्रोह और बमबाज़ी का सबक़ नवयुवकों को पढ़ाया था—इस बार अहिंसा का नाट्य करना था। मेरे लिए दुर्लभ कुछ भी नहीं था। खद्दर का कुर्त्ता और गान्धी टोपी पहिन कर स्वयंसेवकों में नाम लिखा लिया। अपनी बुद्धिमत्ता से लोगों पर प्रभाव जमाते देर नहीं लगी। जो कार्य मेरे सुपुर्द किया जाता, जान लगा कर उसे पूरा करता।

नंगे-पांव गांव-गांव घूमकर आंधी-पानी की उपेक्षा करके कांग्रेस का प्रचार करता। इस परिश्रम के बल पर उस ज़िले में मेरा नाम हो गया। स्वयंसेवक से लेकर नेतागण तक मेरा सम्मान करने लगे।

वह समय भी शीघ्र आया जब मैं सत्याग्रहियों का कमान्डर नियुक्त हुआ। अन्धा क्या चाहे दो आंखें। कमान्डर के रूप में हर स्थान पर मेरी पहुंच हो गई। कई बार कमेटी की मीटिंग में जाता और दूसरे ही दिन सारे कार्यक्रम पर पानी डाल आता। कार्यकर्ता हैरान होते कि किस प्रकार हमारे सारे गुप्त कार्यक्रम का पुलिस को पता लग गया। सबके सम्मुख अधिक आश्चर्य मैं ही प्रकट करता। कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी पर स्टेज पर खड़ा होकर जनता के बीच में गवर्नमेन्ट की नीति की निन्दा करता, और सी० आई० डी० के कर्मचारियों को खूब जली-कटी सुनाता। जनता मेरी जोशीली स्पीच सुनकर 'जय' के नारे लगाती। मैं अपनी कुटिलता पर मन-ही-मन मुस्कराता।

दोनों ओर मेरी तूती बोल रही थी। जनता की आंखों में मैं कौम पर मिटनेवाला सैनिक, देश का सच्चा हितैषी और गवर्नमेन्ट की आंखों में चतुर जासूस, साम्राज्य का खैरख्वाह।

मेरे द्वारा देश का कितना अहित हुआ, उसका अनुमान मैं स्वयं ही कर सकता हूं। चारों ओर मेरे सिखाये चेले अपने कार्य को सफल बनाने में लगे थे। जब कांग्रेस का बड़ा समुदाय जेल के बन्धन में जकड़ दिया गया, तो मुझे खुलकर खेलने का अवसर मिला। अब तो मैं भोले ग्रामीण सत्याग्रहियों का नेता बन गया था। जनता में जोश उत्पन्न करके नित्य नये उत्पात खड़े करता। जनता पर लाठी चलवाना, गोलियां चलवाना मेरा उद्देश्य था।

मैं इस आन्दोलन पर विचार करता, तो देश-भक्तों की मूर्खता पर खूब हंसता। लोगों को क्या हो गया है, कैसे मूर्ख हैं लोग ! एक जोशीली स्पीच सुनी और पिघल गये। बड़े-बड़े पढ़े-लिखे विद्वानों की चेतना शक्ति नष्ट हो गई है। व्यर्थ ही अपना नाश कर रहे हैं। बड़ी-बड़ी तनख्वाहें पानेवाले भी नौकरी से इस्तीफा देकर कांग्रेस के चक्कर में फंस जाते हैं। यह समय साहसपूर्वक धन कमाने का है। हमारे अनेक पुलिस के कर्मचारी निरे डरपोक और कायर हैं। लाठी-चार्ज के समय इनके हाथ नहीं उठते, आंसू बहाने लगते हैं, कोई इस्तीफा देता फिरता है, कोई अपने को धिक्कारता है। ये मूर्ख समझते ही नहीं कि जीवन में तरक्की का कितना महत्त्व है।

विद्वानों का कहना है, यह सत्य की लड़ाई है, न्याय का युद्ध है, इस कारण मन स्वतः ही इस ओर आकृष्ट होता है। किन्तु सब गपोड़-है; कुछ नहीं सब मूर्खता है, केवल मूर्खता। मैं भी तो हाड़-मांस का पुतला हूं, मेरे ऊपर प्रभाव क्यों नही होता ? बड़े-बड़े लीडरों के प्रभावशाली व्याख्यान मैंने सुने हैं। लोगों को लाठी खाते मैंने अपनी आंखों देखा है। गोलियां चलीं, कितने हताहत हुए। घर उजड़ गये, बच्चे अनाथ हुए, स्त्रियां विधवा हुईं। उन लोगों का करुण चीत्कार मैंने अपने कानों से सुना है, उनकी दीन दशा अपनी आंखों से देखी है, किन्तु मेरे विचारों में लेशमात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ। फिर कैसे मानूं कि सत्याग्रहियों में कुछ सामर्थ्य है, अहिंसा में बल है, महात्मा गान्धी में अद्भुत शक्ति है।

सत्याग्रही नायक के नाते मुझे भी जेल का दण्ड मिला। किन्तु वहां मुझे कुछ कष्ट न था। सरकार की ओर से निजी तौर पर मुझे हर प्रकार की सुविधाएं प्राप्त थीं। मैं साधारण राजनैतिक बन्दियों से अलग रखा जाता था। सत्याग्रहियों का अनुमान था कि सरकार की आंखों में मैं भयंकर कार्यकर्ता हूं, इसलिए सबसे अलग रखा जाता हूं।

एकान्त में बैठे-बैठे भी मैं एक षड्यन्त्र का आयोजन कर रहा था। तीसरे-चौथे दिन मुझे अन्य राजनैतिक बन्दियों की बैरक में जाने की सुविधा प्राप्त थी। गांववालों के मन में मेरे प्रति श्रद्धा थी। जेल जाने पर वह श्रद्धा और अधिक बढ़ गई। जन्मभूमि के उन भोले-भाले पुजारियों को मैंने ऐसा अनुमान करा दिया था कि मैंने भूख-हड़ताल आदि करके ही उन लोगों के समीप आने की सुविधा प्राप्त की है। जेल में भी मैं ग्रामीण सत्याग्रहियों का नेता बना हुआ था। सत्याग्रहियों को थोड़ी उत्तेजना

देकर मैंने एक महान् भयंकर काण्ड उपस्थित कर दिया । राजनैतिक बन्दियों को भोजन अत्यन्त खराब मिल रहा था । कई बार वे लोग जेल-कर्मचारियों से खाने की शिकायत कर चुके थे, रोटी कच्ची होती है, दाल में आधे कंकड़ होते हैं, किन्तु कुछ सुनवाई नहीं हुई । मैंने सबको अनशन करने का परामर्श दिया । बन्दियों ने नत-मस्तक होकर अपने कमान्डर के आदेश का पालन किया ।

भूख हड़ताल के चार दिन शान्ति से व्यतीत हो गए। अवसर देख कर मैं पहुंचा और भूखे शेरों को छेड़ दिया—"भाइयों, चार दिन हो गए, जेल-कर्मचारियों ने अबतक तुम्हारी सुविधा का ध्यान नहीं किया, निराहार अवस्था में भी तुमसे पूरी मशक्कत ली जाती है । वीरो, इस अन्याय के प्रति हमें विद्रोह करना होगा । आज से मशक्कत करने से इन्कार कर दो, और जेलर साहब से कह दो--'हम पशुओं की भांति बैरक के अन्दर बन्द नहीं रहेंगे ।' यदि जेल-कर्मचारी जबरन बन्द करें, तो बैरक के दरवाजे तोड़ फेंको । याद रखो, अपने निश्चय में अन्तर न आने पाये । सत्याग्रहियों का ध्येय है, जान चली जाय लेकिन आन न जाय ।"

दूसरे दिन प्रातःकाल सारी जेल में हाहाकार मच गया । ख़तरे का घण्टा बजा । जेल-कर्मचारियों के अतिरिक्त पुलिस भी बड़ी संख्या में एकत्रित हो गई । राजनैतिक बन्दियों में से अनेक होनहार नवयुवकों को हथकड़ी-बेड़ी पहिनाकर काल-कोठरी में बन्द कर दिया गया । केस चला । भिन्न-भिन्न प्रकार के दण्ड और कई व्यक्तियों को तीस-तीस बेतों के दण्ड की व्यवस्था की गई । बेतों के दण्ड का समय आया, नादिरशाही का दृश्य उपस्थित हुआ । जल्लादी कोड़े पीठों पर पैशाचिकता का पूर्ण गति से नृत्य करने लगे । कोड़े खानेवाले सत्याग्रहियों ने शरीरों से मांस की धज्जियां उड़ते समय भी—'भारत माता की जय' के नारे लगा-लगा कर वीरता का प्रवाह बहाने में कुछ उठा नहीं रखा । किन्तु उस मानवता के प्रतिकूल भयानक काण्ड से सारे राजबन्दियों के हृदय दहल गये । सब पर आतंक छा गया ।

मुझे रिपोर्ट मिली, इस काण्ड से जनता में महान् आतंक छा गया है, आन्दोलन में शिथिलता आ गई है । सरकार ने अब अपना दमनचक्र घुमाकर स्थिति पर क़ाबू पाने का निश्चय किया है ।

मैं जेल में एक वृक्ष के नीचे बैठा अपनी बुद्धि की सराहना कर रहा था—बुद्धि का यह चमत्कार कुछ करके रहेगा । इस आन्दोलन का नामोनिशान मिटा देगा । सारे देश के इन परवानों का रक्त ठण्डा पड़ जायगा ।

उसी समय टूटती आवाज़ में 'भारत माता की जय' के एक करुण चीत्कार ने मेरा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। हृदय में एकदम बिजली-सी टूट गई। जान पड़ा इस स्वर से मेरा कुछ सम्बन्ध है। उधर दृष्टि पड़ते ही मेरे मुख से चीख निकल गई—"उमेश !"

मैं बौखला कर उधर झपटा। मेरा उमेश खून से लथपथ 'जय' बोलते हुए पृथ्वी पर बेहोश होकर गिर पड़ा था। शरीर के बड़े-बड़े घावों से मांस के लोथड़े लटक रहे थे। सिर फट गया था, उसमें से रक्त की धारा बह रही थी। मेरे हृदय में आग के शोले उठने लगे, आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं। वे पुलिस के कर्मचारी जो इस दशा में मेरे उमेश को गिरफ्तार करके लाये थे, मुझे जल्लाद-सदृश दीख रहे थे। मैंने चाहा कि इन सब नर-पिशाचों का खून पी लूं। किन्तु हृदय के साथ ही मेरा शरीर कांपने लगा। आंखें स्वतः ही बन्द हो गईं। जीवन में प्रथम बार मैंने अनुभव किया पीड़ा की ज्वलन्त ज्वाला को।

उमेश को स्ट्रेचर पर डाल कर जेल-अस्पताल में पहुंचाया गया। उसके सिरहाने बैठे हुए अतीत के मेरे अपने कारनामे सजीव होकर आंखों के सामने घूमने लगे। मस्तिष्क अपने कृत्यों की विशद व्याख्या करके उनके परिणामों के चित्र बना-बनाकर आंखों को प्रदर्शन देने लगा। देश-वासियों के साथ ही मैं अपने परिवार वालों के समक्ष देश-भक्ति का नाट्य कर रहा था। मेरी गिरफ़्तारी का मेरे एकमात्र पुत्र उमेश पर भी प्रभाव हुआ। वह कॉलिज छोड़ कर आन्दोलन में सम्मिलित हो गया, और लाठी, गोली चलने के भीषण काण्ड में उपस्थित होने के कारण इस दशा को प्राप्त हुआ।

उसका कोमल हृदय और शरीर उस पैशचिकता के प्रहार को सहन नहीं कर सका। रात्रि के मध्यान्ह में उसके हृदय की गति रुक गई। हृदय के हाहाकार ने मेरी धूर्तता और विश्वासघात का परदा उठा कर उनके नग्न सत्य का दर्शन करा दिया। वह सत्य हृदय में कोड़े मार-मार कर मुझे पश्चात्ताप के तीव्र निदाघ में जलाने लगा।

अब तो आनन्द और सुख का संसार मेरे लिए रौरव नरक बन गया है।



: ८ :

शत्रु

ज्ञान को एक रात सोते समय भगवान् ने स्वप्न-दर्शन दिए, और कहा—"ज्ञान मैंने तुम्हें अपना प्रतिनिधि बना कर संसार में भेजा है। उठो, संसार का पुनर्निर्माण करो।"

ज्ञान जाग पड़ा। उसने देखा, संसार अन्धकार में पड़ा है और मानव-जाति उस अन्धकार में पथभ्रष्ट होकर विनाश की ओर बढ़ती चली जा रही है। वह ईश्वर का प्रतिनिधि है, तो उसे मानव-जाति को पथ पर लाना होगा, अन्धकार से बाहर खींचना होगा, उसका नेता बन कर उसके शत्रु से युद्ध करना होगा।

और वह जाकर चौराहे पर खड़ा हो गया और सबको सुनाकर कहने लगा—"मैं मसीह हूं, पैगम्बर हूं। भगवान् का प्रतिनिधि हूं। मेरे पास तुम्हारे उद्धार के लिए एक सन्देश है।"

लेकिन किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। कुछ उसकी ओर देख कर हँस पड़ते; कुछ कहते पागल है; अधिकांश कहते, यह हमारे धर्म के विरुद्ध शिक्षा देता है, नास्तिक है, इसे मारो। और बच्चे उसे पत्थर मारा करते।

x x x

आखिर तंग आकर वह एक अंधेरी गली में छिप कर बैठ गया और सोचने लगा। उसने निश्चय किया कि मानव-जाति का सबसे बड़ा शत्रु है धर्म, उसीसे लड़ना होगा।

तभी पास कहीं से उसने करुण-क्रन्दन की आवाज़ सुनी। उसने देखा, एक स्त्री भूमि पर लेटी है, उसके पास एक बहुत छोटा-सा बच्चा पड़ा है, जो या तो बेहोश है या मर चुका है, क्योंकि उसके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं है।

ज्ञान ने पूछा—"बहन क्यों रोती हो?"

उस स्त्री ने कहा—"मैंने एक विद्यार्थी से ब्याह किया था। जब लोगों को इसका पता चला, तब उन्होंने उसे मार डाला और मुझे निकाल दिया। मेरा बच्चा भी भूख

से मर रहा है।"

ज्ञान का निश्चय और दृढ़ हो गया। उसने कहा—"तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा।" और उसे अपने साथ ले गया।

ज्ञान ने धर्म के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया। उसने कहा—"धर्म झूठा बन्धन है। परमात्मा एक है, अबाध है और धर्म से परे है। धर्म हमें सीमा में रखता है, रोकता है, परमात्मा से अलग रखता है, अतः हमारा है।"

लेकिन किसी ने कहा—"जो व्यक्ति पराई और बहिष्कृता औरत को अपने साथ रखता है, उसकी बात हम क्यों सुनें ? वह समाज से पतित है, नीच है।"

तब लोगों ने उसे समाजच्युत करके बाहर निकाल दिया।

x x x

ज्ञान ने देखा कि धर्म से लड़ने के पहले समाज से लड़ना है। जब तक समाज पर विजय नहीं मिलती, तब तक धर्म का खंडन नहीं हो सकता।

तब वह इसी प्रकार प्रचार करने लगा—वह कहने लगा—"ये धर्म ध्वजी, ये पुंगी-पुरोहित, मुल्ला ये कौन है ? इन्हें क्या अधिकार है हमारे जीवन को बांध रखने का ? आओ, हम इन्हें दूर कर दें, एक स्वतन्त्र समाज की रचना करें, ताकि हम उन्नति के पथ पर बढ़ सकें।"

तब एक दिन विदेशी सरकार के दो सिपाही आ कर उसे पकड़ ले गए, क्योंकि वह वर्गों में परस्पर विरोध जगा रहा था।

x x x

ज्ञान जब जेल काट कर बाहर निकला, तब उसकी छाती में इन विदेशियों के प्रति विद्रोह धधक रहा था। यही तो हमारी क्षुद्रताओं को स्थायी बनाए रखते हैं, और उससे लाभ उठाते हैं। पहले अपने को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करना होगा, तब.. .....और वह गुप्त रूप से विदेशियों के विरुद्ध लड़ाई का आयोजन करने लगा।

एक दिन उसके पास एक विदेशी आदमी आया। वह मैले-कुचैले, फटे-पुराने ख़ाकी कपड़े पहने हुए था। मुख पर झुर्रियां पड़ी थीं, आंखों में एक तीखा दर्द था। उसने ज्ञान से कहा—"आप मुझे कुछ काम दें, ताकि मैं अपनी रोज़ी कमा सकूं। मैं विदेशी हूं। आपके देश में भूखा मर रहा हूं। कोई भी काम मुझे दें, मैं करूंगा। आप परीक्षा लें। मेरे पास रोटी का टुकड़ा भी नहीं है।"

ज्ञान ने खिन्न होकर कहा—"मेरी दशा तुमसे कुछ अच्छी नहीं है, मैं भी भूखा हूं।"

वह विदेशी एकाएक पिघल-सा गया। बोला—"अच्छा मैं आपके दुःख से बहुत

दुःखी हूं। मुझे अपना भाई समझें। यदि आपस में सहानुभूति हो, तो भूखे मरना मामूली बात है। परमात्मा आपकी रक्षा करे। मैं आपके लिए कुछ कर सकता हूं।"

x x x

ज्ञान ने देखा देशी-विदेशी का प्रश्न तब उठता है, जब पेट भरा हो। सबसे पहले शत्रु तो यह भूख ही है, पहले भूख को जीतना होगा, तभी आगे कुछ सोचा जा सकेगा..........

और उसने भूख के लड़ाकों का एक दल बनाना शुरू किया, जिसका उद्देश्य था अमीरों से धन छीन कर सबमें समान रूप से वितरण करना, भूखों को रोटी देना इत्यादि; लेकिन जब धनिकों को इस बात का पता चला तो उन्होंने एक दिन चुपचाप अपने चरों द्वारा उसे पकड़वा मंगाया और एक पहाड़ी क़िले में क़ैद कर दिया। वहां एकान्त में वे उसे सताने के लिए नित्य एक मुट्ठी चबैना और एक लोटा पानी दे देते, बस।

धीरे-धीरे ज्ञान का हृदय ग्लानि से भरने लगा। जीवन उसे बोझ-सा जान पड़ने लगा। निरन्तर यह भाव उसके भीतर जगा करता कि मैं, ज्ञान, परमात्मा का प्रतिनिधि इतना विवश हूं कि पेट भर रोटी का प्रबन्ध मेरे लिए असम्भव है ? यदि ऐसा है, तो कितना व्यर्थ है यह जीवन, कितना छूँछा, कितना बेमानी !

एक दिन वह क़िले की दीवार पर चढ़ गया। बाहर खाई में भरा हुआ पानी देखते-देखते उसे एक दम से विचार आया, और उसने निश्चय कर लिया कि वह उसमें कूद कर प्राण खो देगा। परमात्मा के पास लौट कर प्रार्थना करेगा कि मुझे इस भार से मुक्त करो; मैं तुम्हारा प्रतिनिधि तो हूँ; लेकिन ऐसे संसार में मेरा स्थान नहीं है।

वह स्थिर-मुग्ध दृष्टि से खाई के पानी में देखने लगा। वह कूदने को ही था कि एकाएक उसने देखा, पानी में उसका प्रतिबिम्ब झलक रहा है और मानो कह रहा है—"बस, अपने आपसे लड़ चुके ?"

x x x

ज्ञान सहमकर रुक गया; फिर धीरे-धीरे दीवार पर से नीचे उतर आया और क़िले में चक्कर काटने लगा।

और उसने जान लिया कि जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि हम निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होते हैं।



: ९ :

मास्टर साहब

न जाने क्यों बूढ़े मास्टर रामरतन को कुछ अजीब तरह की थकान-सी अनुभव हुई और सन्ध्या-प्रार्थना समाप्तकर वे खेतों के बीचोंबीच बने उस छोटे-से चबूतरे पर बिछी एक चटाई पर ही लेट रहे। सन् १९४७ के अगस्त मास की एक चांदनी रात अभी-अभी शुरू हुई थी। मास्टर साहब ने जब सन्ध्या-प्रार्थना शुरू की थी, तो आकाश पर छितराए बादलों में अभी गहरी लाली विद्यमान थी; परन्तु सन्ध्या समाप्त कर जब उन्होंने अपनी आंखे खोलीं, तो सब तरफ़ चांदनी व्याप्त हो चुकी थी और आकाश क़े एक भाग में छाए हल्के-हल्के बादल रुई के बंडलों की तरह सफ़ेद दिखाई देने लगे थे। पिछले दिनों बहुत गरमी रही थी—मौसम की भी और दिमाग़ की भी। मास्टर साहब का यह कस्बा जैसे दुनिया के एक किनारे पर है। नज़दीक-से-नज़दीक का रेलवे-स्टेशन वहां से ३० मील की दूरी पर है। फिर भी पिछले कितने ही दिनों से कितनी अमंगल पूर्ण खबरें दिन-रात सुनने में आ रही हैं। सुना जाता है, मुसलमान हिन्दुओं और सिक्खों के खून के प्यासे बन गए हैं। दुनिया तबाह हो रही है। घर-बार लूटे जा रहे हैं। सब तरफ मार-काट जारी है। मास्टर साहब के गांव में अभी तक अमन-चैन है, फिर भी वहां के वातावरण में एक गहरा आस स्पष्ट रूप से छाया हुआ है।

चाँदनी रात की ठण्डी हवा और चारों तरफ गहरा सन्नाटा। मास्टर साहब को जैसे राहत-सी मिली। थके हुए दिमाग़ का बोझ उतर-सा गया। ऊँह, ये सब झूठी अफ़वाहें हैं! कभी ऐसा भी हो सकता है! भला, जब मैंने किसी का कुछ भी नहीं बिगाड़ा तो किसीको कुत्ते ने काटा है कि वह मेरे खून तक का प्यासा बन जाय! अपनी ज़िन्दगी के ६५ बरस मैंने यहां बिताए हैं। मेरे शागिर्दों की संख्या हज़ारों में है। हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान सभी को मैंने एक समान दिलचस्पी से पढ़ाया है। कोई एकाएक मेरा दुश्मन क्यों बन जायगा? मगर यह पाकिस्तान! मास्टर साहब की दिमाग़ी राहत को जैसे एकाएक ठोकर लग गई! हूं, यह पाकिस्तान तो अब सिर पर ही आने वाला है! मास्टर साहब के शरीर-भर में एक कंपकंपी-सी छूट गई।

मां प्रकृति ने जैसे अपने इस बूढ़े पुत्र को एक प्यार भरी थपकी दी। हवा की

ठंडक और भी बढ़ गई और चांदनी का उजलापन और भी चमक आया । मास्टर साहब को सहसा अनुभव हुआ, यह तो वही दुनिया है, जिसे देखने का अभ्यास उन्हें बचपन से है । वही खेत हैं, जिन्हें उनके बाप-दादा उनके लिए छोड़ गए हैं । वही आसमान है, वही धरती है और वही सदैव ताज़ी बनकर बहने वाली हवा है । आखिर पाकिस्तान इन सबको तो नहीं बदल डालेगा । ये सब तो उसी तरह कायम रहेंगे । आख़िर पाकिस्तान में भी इन्सान की मिल्कीयत रहेगी, काम धन्धे रहेंगे, ज़बान रहेगी, लिखना-पढ़ना रहेगा । फिर मेरे-जैसा फ़ारसीदां पाकिस्तान वालों को क्योंकर नागवार गुज़रेगा ? पाकिस्तान बनेगा, तो यह सब-कुछ बदल थोड़े ही जायगा । आखिर कोई बाहर के लोग तो आकर पाकिस्तान को नहीं बसायेंगे । पाकिस्तान एक दिन बनना ही था । चलो, वह हमारी ज़िन्दगी में ही बन गया ।

रात का सन्नाटा और भी गहरा हो गया और अपनी इस छोटी सी ज़मीदारी के इस अत्यन्त सुरक्षित भाग पर लेटे-लेटे मास्टर साहब को नींद आ गई । प्रभात की लाली आसमान पर दिखाई देने लगी ही थी कि मास्टर साहब की नींद टूट गई । सहसा उन्होंने पाया कि वातावरण अभी तक एकदम नीरव है । यहां तक कि चिड़ियों की चहचहाहट भी उन्हें सुनाई नहीं दी । मास्टर साहब उठ खड़े हुए और तेज़ी से गांव की ओर चले पड़े ।

एक ख़ास तरह की मनहूसियत जैसे उन्हें चारों ओर फैली हुई दिखाई दे रही थी । राह में कितने ही मुसलमान किसानों के कच्चे कोठे हैं । उन कोठों के आसपास कितने ही बच्चों और औरतों को उन्होंने देखा । उनमें से अधिकांश से वे परिचित थे, परन्तु आज सभी उन्हें कुछ बदले हुए-से प्रतीत हो रहे थे । एक गहरी चुप्पी जैसे पुकार-पुकार कर उन्हें चेतावनी दे रही थी कि महाकाल की बेला सिर पर है । राह के किसानों के चेहरे ज़रूर गम्भीर थे, परन्तु मास्टर साहब से किसीने कुछ भी नहीं कहा । वे तेज़ी से अपने गांव की ओर बढ़ते गए ।

यह दूर पर क्या दिखाई दे रहा है ? मास्टर रामरतन सहसा चौंक पड़े । जिस तरफ उनका गांव है, उधर ही सुदूर क्षितिज पर बहुत बड़े पैमाने पर यह काला-काला क्या दिखाई दे रहा है ! ये बादल हर्गिज़ नहीं हैं ; क्योंकि बादल नीचे से ऊपर को नहीं जाया करते ! मास्टर साहब की चाल और भी तेज़ हो गई । अब उन्हें सुदूर क्षितिज पर लाली भी दिखाई देने लगी । सुबह-सुबह पश्चिम में दिखाई देने वाली यह लाली स्पष्टतः किसी बहुत बड़े अमंगल की सूचक थी । बूढ़ा मास्टर अपने परमात्मा से प्रार्थना करने लगा; और चाहे जो-कुछ हो, यह अग्निकांड उसके गांव में न हुआ हो । मगर यह तो स्पष्ट ही है कि उनका गांव जल रहा है । बूढ़े मास्टर ने अपनी

प्रार्थना की मांग और भी कम कर दी : चाहे उनका सारा गांव जलकर भस्म हो जाय, उनके गांव के सभी निवासी सही-सलामत बच जांय ।

मास्टर साहब अब दौड़ने लगे । बहुत जल्द वे पसीना-पसीना हो गए, पर उनकी दौड़ जारी रही । कुछ दूर पहुंचकर एक अत्यन्त त्रास-दायक महानाद-सा भी उन्हें सुनाई देने लगा, जैसे सैंकड़ों नर-नारी एक साथ हाहाकार कर रहे हों ।

बूढ़े मास्टर ने अपनी प्रार्थना की मांग और भी कम कर दी : चाहे कितने ही लोग कत्ल भी क्यों न हो जायं, उनके गांव की किसी लड़की का अपमान न होने पाए ।

और तभी सहसा चिन्ता के एक बड़े तूफ़ान ने उनके हृदय को एक सिरे से दूसरे सिरे तक झकझोर कर रख दिया । ओह, उनके परिवार की सब स्त्रियां और बच्चे गांव में ही थे ! और उनकी लाड़ली पोती निर्मला, जिसकी पन्द्रहवीं वर्षगांठ अभी ५ ही दिन हुए बीती है !

मास्टर साहब के हृदय की सम्पूर्ण सद्-अभिलाषाएं खुद-ब-खुद अपनी लाड़ली पोती निम्मो के चारों ओर केन्द्रित हो गईं ! ओ मेरे परमात्मा, ओ मेरे देवता, यह तेरी अपनी लज्जा का सवाल है ! मेरे निम्मो को तू अपने पास भले ही बुला ले, उसकी बेईज्ज़ती मत होने देना ।

पूरब दिशा में अग्नि का पुंज सूरज निकल आया । मास्टर साहब अब अपने गांव के काफ़ी नज़दीक पहुंच गए थे । अब वे अकेले भी नहीं थे । उनके गांव के कितने ही हिन्दू और सिक्ख खेतों में छिपे या गांव की ओर से भागकर आते हुए उन्हें दिखाई दिए । मास्टर साहब पसीने से तर-ब-तर हो गए थे । राह की धूल उस पसीने से लगकर वहीं द्रवीभूत होने लगी थी । इस बहती मिट्टी से उनका मुंह, कपड़े और बाल बुरी तरह भर गए । फिर भी जिस किसी तरह वे दौड़ते चले गए और अपने गांव की सीमा में आ पहुंचे ।

मास्टर साहब ने आवाज़ दी—"नत्थूसिंह, मेरे घर का क्या हाल है ?"

नत्थूसिंह उनका पड़ोसी था । वह इतना उदास दिखाई दे रहा था, जैसे उसकी निर्जीव देह-मात्र चल-फिर रही हो । नत्थूसिंह ने मुंह से कुछ नहीं कहा, सिर्फ इस तरह सिर हिला दिया, जिससे उसकी असमर्थता प्रकट होती थी । मास्टर साहब ने कितने ही लोगों को पुकारा, पर जवाब कहीं से नहीं मिला । कुछ ही क्षणों के बाद मास्टर साहब अपने मोहल्ले के सामने विद्यमान थे । राह भर में कितनी लाशों को लांघकर मास्टर साहब इस जगह तक पहुंच पाए ।

मास्टर साहब का मोहल्ला पक्के मकानों का था । इससे आग वहां बहुत फैलने नहीं पाई थी । किनारे के कुछ मकान ज़रूर जल गये थे और अब उनमें से गहरा

नीला-काला धुंआ उठ रहा था। पर मास्टर साहब का अपना मकान ज़रा भी नहीं जलने पाया था और न अब उधर आग बढ़ने का ख़तरा ही था। मास्टर साहब लपककर घर के सामने पहुंचे। गली भर में एक भी आदमी उन्हें दिखाई नहीं दिया। सब तरफ सन्नाटा था—मौत का गहरा सन्नाटा ! कुत्ता, बिल्ली या कोई भी ज़िन्दा प्राणी गली में नहीं था। आसमान में परिन्दे तक नहीं थे। सिर्फ दूर पर जल रहे मकानों की ज्वालाएं एक भयोत्पादक आवाज़ उत्पन्न कर रही थीं।

क्षणभर को मास्टर साहब ठिठक गए। जो-कुछ हो बीता है, उसका आभास उन्हें मिल गया था। फिर भी यह उम्मीद तो थी कि घर के लोग शायद बच गये हों। अगर यही उम्मीद कायम रह सकती तो ! क्षण-भर के बाद मास्टर साहब ने सहमे-सहमे से आवाज़ दी—'निम्मो !'

कोई जवाब नहीं आया !

मास्टर साहब ने पुकारा—"निम्मो की दादी ! बेटा सत्ती; बेटा प्रकाश; बेटी सतवत्ती !"

कोई जवाब नहीं आया।

मास्टर साहब धीरे-धीरे घर के भीतर प्रविष्ट हुए। घर के सब दरवाज़े चौपट खुले पड़े थे। अन्दर जैसे कोई झाड़ू-सा दे गया था। कहीं कोई चीज़ नहीं थी। गुंडे सभी कुछ उठा ले गए थे। भीतर जाते ही एक तरफ बैठक है। सब खाली। उसके बाद एक खुला सहन है। इस सहन के दाहिनी ओर दो कमरे हैं, जो सर्दियों में परिवार के सोने के काम आते हैं। दोनों कमरे एक दम खाली पड़े हैं। सहन की बाईं ओर एक दरवाज़ा है, उसमें से होकर एक और छोटे सहन में जाना होता है, जहां घर के जानवर बांधे जाते हैं—एक बरामदा, एक कमरा जानवरों के लिए। इस वक्त सब खाली हैं। कमरे के पिछवाड़े में ज़रा-सी जगह खाली है, जिसके चारों ओर ऊँची दीवारें हैं। यहां मास्टर साहब की बूढ़ी घरवाली ने तुलसी के कुछ घने झाड़ बो रखे हैं और उनके पास एक चबूतरे पर वे नियमित रूप से भगवान की पूजा करती हैं। धड़कते दिल से मास्टर साहब इस झाड़ तक आ पहुंचे।

ओह, मेरे भगवान् ! यह सब क्या सच है ! तुलसी के उस झाड़ के नीचे नन्हें सत्ती और नन्हें प्रकाश के क्षत-विक्षत निष्प्राण देह पड़े हैं, मानो अनजान शिशु डरकर मां तुलसी की गोद में आसरा पाने आए हों। उधर चबूतरे पर मां-बेटी--मास्टर साहब की जीवन-संगिनी अपनी बड़ी लड़की से चिपककर—पड़ रही हैं निष्प्राण, निस्पन्द !

क्षणभर के लिए मास्टर साहब को प्रतीत हुआ, जैसे वे स्वयं निष्प्राण हो गये हैं; उनके हृदय की सम्पूर्ण अनुभूति सन्न होकर एकदम निष्क्रिय बन गई है। परन्तु अभी तो मास्टर साहब ने सभी कुछ नहीं देखा ! उनकी लाड़ली निम्मो कहां है ?

बूढ़े मास्टर की बेहोश होती हुई चेतना खुद-ब-खुद लौट आई ! वे अत्यन्त करुण स्वर में चीख़ उठे—'निम्मो, निम्मो, निम्मो !'

कहीं से कोई जवाब नहीं मिला।

x x x x

उसके बाद घण्टों की मेहनत से मास्टर रामरतन रात के महाप्रलय के सम्बन्ध में जो कुछ जान पाए, उसका सार इतना ही था कि चांद डूबने से घण्टाभर पहले मुसलमानों की एक बहुत बड़ी संख्या ने गांव के उस भाग पर हमला कर दिया, जिसमें हिन्दू और सिक्ख रहते थे। यह हमला इतना अचानक और इतने ज़ोर से हुआ कि उसका मुकाबला किया ही नहीं जा सका। आक्रमणकारी लोगों में बहुत बड़ी संख्या आस-पास के तथा दूर से आए मुसलमान किसानों की थी; परन्तु यह कह सकना कठिन है कि गांव के मुसलमान भी उसमें शामिल थे या नहीं। भयंकर मार-काट और लूट-मार के बाद गुण्डे लोग गाड़ियों में भरकर लूटा हुआ माल अपने साथ ले गए हैं। गांव की बीसों जवान लड़कियों को भी वे अपने साथ लेते गये हैं। वे लोग ही बच पाए, जो रात के वक्त घरों से भागकर खेतों में जा छिपे या दूर भाग गये। वे सब लोग अब एक जगह इकट्ठे कर लिए गये हैं और उन्हें नये हिन्दुस्तान में भेजने का इन्तज़ाम किया जा रहा है। मास्टर साहब के एक पड़ोसी ने इतना ही बताया कि जब वह उनके घर के सामने से होकर भागा जा रहा था, तो घर के भीतर से भयंकर हाहाकार सुनाई दे रहा था। निम्मो के सम्बन्ध में सभी का यह ख्याल था कि गुण्डे ज़रूर उसे अपने साथ उठा ले गये हैं।

बूढ़े मास्टर की परेशानी की सीमा न रही। जन्मभर के उस अत्यन्त ईश्वर-परायण वृद्ध की अन्तरात्मा ने अपने उस अज्ञात आराध्यदेव से पूछा--'मेरे किस अपराध की सज़ा इस छोटी-सी, मासूम-सी बच्ची को मिली है, ओ मेरे देवता ?'

अपनी जीवन-संगिनी, बड़ी विधवा पुत्री और दोनों पोतों को एक साथ खोकर बूढ़े मास्टर के लिये जिन्दगी में क्या दिलचस्पी बाकी रह सकती थी ? अच्छा होता कि वे भी साथ ही मर जाते। पर मास्टर अब यह बात सोच भी नहीं सकते थे। उनकी लाड़ली पोती निम्मो ज़िन्दा है और वह गुण्डों के हाथ में है।

अपना जीवन-ध्येय चुनने में मास्टर साहब को सोचने की आवश्यकता नहीं

पड़ी। वह तो जैसे आसमान पर लिखा हुआ-सा उनके सामने आ गया। बूढ़े मास्टर ने निश्चय किया कि वे जिस किसी तरह निम्मो की तलाश करेंगे, किसी-न-किसी तरह उसके पास पहुंच जायेंगे और—? साफ़ था कि बूढ़ा उसे बचा नहीं सकेगा तब ? निम्मो के पास पहुंचकर बूढ़ा दादा अपने हाथों अपनी पोती की हत्या करेगा और उसके बाद खुद भी मर जायगा।

सांझ तक गांव के भले मुसलमानों की मेहनत से वे सब हिन्दू और सिक्ख एक धर्मशाला में एकत्र कर दिए गए, जो प्रभात के महाप्रलय से बाकी बच रहे थे। थाने से दो बार सिपाही भी उनकी देखभाल के लिए आ पहुंचे और उन्हें ज़िले की ओर ले जाने का प्रबन्ध किया जाने लगा। परन्तु मास्टर रामरतन इन लोगों में नहीं थे। न-जाने वे किस वक्त चुपचाप गांव से खिसक गए।

गांव छोड़ने के तीन दिनों के भीतर ही मास्टर रामरतन का जैसे कायाकल्प हो गया। मुंह की झुर्रियां और भी गहरी हो गईं, आंखें एक तरह से गढ़े में चली गई और उनके नीचे कालिमा-सी पुत गई। ये तीन डरावने दिन उनकी ६५ साल की ज़िन्दगी पर जैसे पूरी तरह छा गए। मास्टर साहब का चेहरा इतना ग़मगीन और इतना गम्भीर दिखाई देने लगा, जैसे वे अपनी सारी ज़िन्दगी में कभी न हंसे हों और न मुस्कराए ही हों।

किसी अपरिचित के लिए यह पहचान सकना अब आसान नहीं था कि मास्टर साहब हिन्दू हैं या मुसलमान। बेतरतीबी से बढ़े हुए और बेपरवाही से बिखरे हुए उनके धूलिधूसरित बालों ने उनकी आकृति पर फ़कीरी की छाया डाल दी थी—एक फ़कीर, जो न हिन्दू होता है और न मुसलमान। वह फ़कीर बन ही तभी सकता है, जब वह इस दुई को, इस भेद-भाव को, एकदम भूल जाय।

आसपास की कितनी ही बस्तियों और गांवों की ख़ाक छानते-छानते मास्टर साहब को यह मालूम हो गया कि उनके गांव पर आक्रमण करनेवालों का मुखिया एक पूरे गांव का ज़मींदार गुलामरसूल था। और यह भी कि वह कितनी ही हिन्दू-लड़कियों को अपने साथ घर ले गया है।

राह की एक सुनसान पगडंडी पर चलते-चलते सहसा बूढ़े मास्टर को अनुभूति हुई कि वे अपने लक्ष्य के बहुत नज़दीक आ पहुंचे हैं। इस अनुभूति के साथ-ही-साथ उनका हाथ जैसे खुद-ब-खुद जेब में पहुंच गया, जहां एक चाकू संभाल कर रखा गया था। बूढ़े मास्टर ने चारों ओर एक खोजती निगाह डाली और जब दूर तक उन्हें और कोई मानव-आकृति नहीं दिखाई दी, तो कांपते हाथों से उन्होंने वह चाकू जेब से बाहर निकाल लिया। चलते-चलते बाएं हाथ में चाकू पकड़कर दाहिने हाथ से उसे खेला और बिना रुके ही दाहिने हाथ की तर्जनी उंगली से उसकी धार को परीक्षा

की। बूढ़े का हाथ बुरी तरह से कांप रहा था। इससे उंगली की मोटी चमड़ी ज़रा-सी कट गई और उसपर खून चमक आया। चार दिनों में पहली बार मास्टर को उत्साह की अनुभूति हुई। एक अजीब तरह की उत्तेजना उनके थके हुए मन पर छा गई। हां, मैं अपना काम बखूबी कर सकूंगा। इस तेज़ चाकू से एक हत्या और उसके बाद आत्महत्या ! चाकू बन्द करके उन्होंने जेब में डाल लिया और डगमगाते पैरों की गति स्वयमेव तेज़ हो गई।

गुलामरसूल का घर तलाश करने में मास्टर साहब को देर नहीं लगी। कुल मिलाकर २५-३० मकान थे और उनमें सबसे बड़ा और सबसे ऊँचा मकान ज़मींदार का था। उन्होंने मकान के दरवाज़े पर दस्तक दी। क्षण-भर में मकान के सहन का दरवाज़ा खुल गया और एक बच्चे ने आकर पूछा—'क्या चाहिए ?'

मास्टर साहब सहसा चौंक गए। बच्चे की उमर उनके चार साल सत्ती से अधिक नहीं थी। तो अभी तक दुनिया में मासूम बच्चे मौजूद हैं ! इस महान् हत्यारे के घर उनका स्वागत एक बच्चा करेगा, इसकी उम्मीद उन्हें क़दापि नहीं थी। मास्टर साहब के झिझक-भरे मौन पर वह बच्चा चकित होनेवाला ही था कि उन्होंने कहा—'मियां गुलामरसूल घर पर हैं ?'

'कौन, अब्बा ?'

'हां, तुम्हारे अब्बा।'

इसी वक्त भीतर से एक नारी-कण्ठ सुनाई दिया—कौन आया है, बेटा हमीद ?'

बच्चे ने जवाब दिया—'कोई फ़कीर है, अम्मी ! अब्बा को पूछता है।' बड़े दरवाज़े के दाहिनी ओर घर की बैठक थी। क्षण-भर बाद बैठक का दरवाज़ा खुल गया और बड़ी उम्र के एक अन्य लड़के ने मास्टर साहब से भीतर चलने को कहा। बैठक में कुछ मोढ़े रखे थे। एक तरफ एक पलंग पड़ा हुआ था। मास्टर साहब चुपचाप एक मोढ़े पर जा बैठे।

वह लड़का बड़ी हैरानी से मास्टर साहब की ओर देख रहा था। उनके बैठ जाने पर उसने पूछा—'चचा से क्या कह दूं ? वे साथ के मकान में गए हैं। मैं अभी जाकर उन्हें बुला लाता हूं।'

मास्टर साहब इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं थे। फिर भी उनके दिमाग़ ने उन्हें धोखा नहीं दिया। मास्टर साहब आज सुबह नूरपूर से इस गांव की ओर चले थे। उन्होंने कह दिया—'चचा से कहना नूरपुर से पैग़ाम आया है।'

लड़का चला गया और मास्टर साहब को जैसे ज़रा सोच सकने की फुरसत मिली। यहां तक तो सब ठीक ! अब आगे क्या होगा ? गुलामरसूल अभी आता

होगा । परन्तु वे अपनी निम्मो को उससे मांग किस तरह सकेंगे ? कोई बहाना तलाश करने से शायद काम बन जाय । यह तो साफ़ ही है कि सब लोग उन्हें मुसलमान समझने लगे हैं । क्यों न वे इसी बात का फायद उठावें । वे कह सकते हैं कि नूरपुर का जमींदार कुछ लड़कियां चाहता है और वह उनके लिए अच्छी कीमत भी देने को तैयार है । इसी बहाने से वे सब लड़कियों को देखने की इच्छा प्रकट कर सकते हैं । और जहां तक भेद खुलने का सवाल है, उन्हें उसकी चिन्ता ही क्या है । आखिर वे तो अपनी जान देने ही यहां आए हैं । अगर उनकी चाल असफल हो गई, तो वे गुलामरसूल पर तेज़ चाकू से हमला तो कर ही सकते हैं । जो-कुछ हो जाय, इसका निश्चय उन्होंने अनायास ही कर लिया ।

और यह निश्चय कर लेने के साथ-ही-साथ उन्हें ध्यान आया कि उनका अन्त समय सिर पर है । कुछ ही क्षणों के भीतर वे अपने परिवार से जा मिलेंगे, अपने भगवान के चरणों में जा पहुंचेंगे । मास्टर साहब मन-ही-मन राम-नाम का जाप करने लगे ।

और सहसा एक अत्यन्त अप्रत्याशित घटना घटित हो गई । जो छोटा बच्चा पहले-पहल मास्टर साहब का स्वागत करने दरवाज़े पर उपस्थित हुआ था, उसी हमीद का हाथ पकड़ कर सहसा निम्मो बैठक के दरवाज़े पर आ उपस्थित हुई । बूढ़ा मास्टर सहसा चीख उठा—निम्मो !

'दरवाज़े पर ही से निम्मो चिल्लाई—'दद्दा ।'

और उसी क्षण बूढ़े रामरतन ने अपनी १५ बरस की पोती को गोद में उठा लिया । न जाने इतनी शक्ति बूढ़े मास्टर में कहां से आ गई ! भावों का पहला तूफ़ान निकल जाने के बाद भी मास्टर को यह समझ में नहीं आया कि वे इस हालत में क्या करें ! जेब में मौजूद तेज़ चाकू की उपस्थिति का ज्ञान उन्हें अब भी था; परन्तु जैसे चाहते हुए भी वे चाकू निकाल नहीं पाए । बूढ़े के आश्चर्य की सीमा न रही, जब उन्होंने पाया कि जैसे बच्चा हमीद निम्मो का साथ ही नहीं छोड़ना चाहता । मास्टर साहब के प्रेम का यह उफ़ान देखकर वह सहम-सा गया है और तब भी उसका दाहिना हाथ निम्मो के बाँए हाथ को पकड़े हुए है ।

मास्टर साहब अभी तक सकते की-सी हालत में थे कि सहसा गली में शोर मच गया--'काफ़िर, काफ़िर !' मास्टर साहब अभी तक अपनी जेब से चाकू निकाल तक नहीं पाए थे कि दो जवान मुसलमानों ने उन्हें जकड़कर पकड़ लिया । घर की एक बूढ़ी औरत ने घर में काफ़िर की मौजूदगी की सूचना बहुत शीघ्र मोहल्ले-भर को दे थी ।

और उसी वक्त गालियां बकते हुए गुलामरसूल ने अपनी बैठक में प्रवेश किया। मुमकिन था कि अपने नये क़ैदी को देखते ही गुलामरसूल उसे मारना-पीटना शुरू कर देता; परन्तु कमरे में मौजूद सभी लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब बूढ़े मास्टर पर निगाह पड़ते ही वह जैसे अचम्भे में भरकर चिल्ला उठा--'ओ, मास्टर साहब !'

जिन दो नौजवानों ने मास्टर को पकड़ रखा था, उनकी जकड़ एकाएक कम हो गई। गुलामरसूल क्षण-भर के अन्तर से फिर चिल्लाया—'ओ, मास्टर साहब ! आप यहां कैसे ?'

और बूढ़ा मास्टर, जो इस अप्रत्याशित घटनाचक्र के प्रवाह में एकदम मूक और एकदम संज्ञाहीन-सा बन गया था, सहसा फफकर रो उठा। दोनों जवानों ने मास्टर को अपनी पकड़ से मुक्त कर दिया और निम्मो अपने दादा से जा चिपकी।

गुलामरसूल ने बूढ़े मास्टर को सान्त्वना देने का प्रयत्न किया। उसने कहा--'मास्टर साहब बचपन में जब हम रोया करते थे, तो आप हमें चुप कराया करते थे और आज...' कहते-कहते सहसा गुलामरसूल चुप हो गया। न-जाने किस शक्ति ने उसे यह अनुभूति प्रदान कर दी कि उसे यह सब कहने का अधिकार नहीं रहा।

बात बदलने की गरज़ से गुलामरसूल ने कहा—'यह लड़की आप की क्या लगती है, मास्टर साहब ?'

बूढ़े मास्टर ने सिसकते हुए कहा—'यह मेरी पोती है।'

गुलामरसूल ने कहा—'तभी !' और वह चुप हो रहा।

बूढ़ा मास्टर निम्मो को छाती से लगाकर अब भी धीरे-धीरे सिसक रहा था। उसने कोई सवाल नहीं किया। क्षण-भर बाद गुलामरसूल ने खुद ही कहा—'शायद तभी चार ही दिनों में हमीद इसे अपनी सगी बहन समझने लगा है' और तब आसमान की ओर ताककर उसने कहा—'खुदा का शुक्र है।'

मानवीय सहानुभूति का हल्का-सा आसरा पाकर बूढ़े मास्टर के हृदय की सम्पूर्ण व्यथा आंखों की राह बह चली, जैसे गरमी पाकर बर्फ़ पिघलती है।

कुछ क्षणों तक गुलामरसूल चुपचाप मास्टर साहब की ओर देखता रहा और उसके बाद धीरे-धीरे आगे बढ़कर उसने बूढ़े मास्टर को अपनी छाती से लगा लिया। मास्टर साहब ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। गुलामरसूल ने बहुत धीमे शब्दों में कहा—'धीरज से काम लो, मास्टर साहब ! तुम्हें अब कोई भय नहीं है ! निम्मो के साथ मेरी हिफ़ाज़त में तुम चाहे जहां चले जा सकोगे।'

: १० :

मैना

अलियार जब मरा तो दो पुत्र, छोटा-सा घर और थोड़ी-सी ज़मीन छोड़कर मरा। दसवें के दिन दोनों भाई क्रिया-कर्म समाप्त करके सिर मुंडाकर आये, तो आने के साथ ही बटवारे का प्रश्न छिड़ गया, और इस समस्या के समाधान के लिए इतने ज़ोरों से लाठियां चलीं कि दोनों भाइयों के मुंडित मुंड फूट गए।

दोनों भाइयों ने इस प्रकार एक-दूसरे का सिर फोड़कर अपना-अपना अपमान मान लिया। बड़े भाई 'मुसाफिर' की धारणा थी कि छोटे भाई ने सिर फोड़कर मेरा बड़ा भारी अपमान किया है। छोटे भाई 'जगन' की भी यही शिकायत थी कि बड़के भइया ने बड़ी मज़बूत लाठी से मेरा अपमान किया है। दोनों ने प्रतिज्ञा की कि इस अपमान का बदला नहीं लिया, तो मेरा नाम नहीं।

किन्तु अपमान के प्रतिशोध के लिए मुक़द्दमा लड़ने को किसी के पास पैसे नहीं थे। केवल लाठियों का भरोसा था; लेकिन इसका मौ़का नहीं था। दोनों ही सतर्क रहते थे, खैर किसी प्रकार दोनों भाई अपने उसी घर में, एक म्यान में दो तलवारों की तरह रहने लगे; लेकिन एक म्यान में दो तलवार के रहने से तलवारों का उतना नुक़सान नहीं होता, जितना कि बेचारे म्यान का। दोनों का क्रोध अपने घर ही पर उतरता था। मुसाफिरराम को ज़रूरत हुई, तो छोटे भाई के लगाए हुए कुम्हड़े और करेले की लताओं को तहस-नहस करके अपनी गौशाला बना ली। इधर जगन ने आवश्यक समझते ही बड़े भाई के भण्डार-घर को तोड़कर दरवाजे के साथ मिला दिया। घर तोड़ने की खबर सुनते ही मुसाफिरराम अपने भाई का सिर तोड़ने के लिए तैयार हो गये; किन्तु गांव वालों ने बीच-बचाव करके झगड़ा शान्त कर दिया।

यह लड़ाई केवल पुरुषों तक ही थी, यह बात नहीं है। स्त्रियों में भी ऐसा घमासान युद्ध होता था जिसका ठिकाना नहीं।

हाथ चमकाकर, माथा मटकाकर, नथ हिलाकर ऐसी-ऐसी गालियों की बौछार की

जाती थी, जिसक अमृतरस लूटने के लिए गांव की सारी महिलाएं एकत्र हो जाती थीं। मुनिया को आदमी का मांस खाना अभीष्ठ नहीं था, फिर भी बड़ी तेज़ी से निनाद करके रधिया को धमकी देती थी—"तेरा भतार खा जाऊंगी !" रधिया भला अपनी चीज़ कैसे दे सकती थी ? चट से कहती—"मेरा भतार क्यों खायगी; तेरा मुस्टंडा तो अभी तक जीता ही है, उसी को चबा !" इसी प्रकार दोनों देवरानी-जेठानी साहित्य के नवरसों से भिन्न गाली-रस की सृष्टि किया करती थीं।

यह लड़ाई-झगड़ा, गाली गलौच एक-दो दिन रहता, तब तो ठीक; यहां तो महीने की लम्बी डग मारता हुआ साल चला गया। घर और बाहर के सभी इस झगड़े से ऊब उठे। गांववालों ने कहा--भाई, तुम लोग आपस में क्यों इतना झगड़ा करते हो ? अपनी-अपनी चीजें बराबर बांट लो, बस झगड़ा खतम हो गया।

दोनों ने सकार लिया, बात ठीक।

आख़िर एक दिन गांववालों की पंचायत जमा हुई। सब कुछ देख-भालकर दुखहरण पाण्डे ने, तम्बाकू फांकते हुए फैसला सुना दिया, और तब आंगन के बीच में दीवार खींच दी गई। घर की कोठरियों को गिन-गिनकर अलग किया गया। हल, बैल, खेत, बारी सब कुछ अलग-अलग हो गये। अब कोई भाई किसी से बोलना भी पसन्द नहीं करता था। एक दूसरे को देखते ही घृणा से मुंह फेर लेता था।

(२)

उपर्युक्त घटना को दो वर्ष बीत गये।

बिल्ली की तरह घर-घर घूमनेवाली पद्मिनी काकी एक दिन मुसाफिर के घर जाकर बोली—"मुंह मीठा कराओ तो एक बात कहूं !"

रधिया ने उत्सुकता से पूछा—"कौन बात है काकी, कहो न ?"

"तुम्हारा भतीजा होनेवाला है !"

रधिया का चेहरा घृणा से सिकुड़ गया। क्रोध से जल उठी। मुंह बिचकाकर बोली—"अय नौज, चूल्हे-भनसार में पड़े भतीजा, और देवी मइया के खप्पर में जायं हमारे देवर-देवरानी। इनको बेटी-बेटा हो, इससे हमको क्या और नहीं हो, इससे क्या। अगर इन लोगों का बस चले, तो हम लोगों को न जाने कब फाँसी लटका दें। ये लोग जैसे अपने हैं, उससे ग़ैर ही कहीं अच्छे।"

इस प्रकार रधिया ने भली-भांति साबित कर दिया कि इससे मुझे तनिक भी खुशी नहीं और पद्मिनी काकी का मुंह मीठा खाने लायक नहीं है।

यह बात बड़े विस्तार-पूर्वक मुनिया के निकट पहुंची। रधिया जलती है, यह सुनते ही उसे एक ईर्ष्यामय आनन्द हुआ। बोली—'अभी से उस कलमुंही के कपार में आग लग गई, तब तो लड़का होने से वह छाती फाड़कर मर जायगी !"

जगन घर में आया, तो उसे भी यही समाचार सुनना पड़ा। सुनकर उसे हर्ष नहीं हुआ। घृणा से जी छोटा हो गया। अपने भाई-भौजाई होकर भी ये लोग कितने नीच हैं ! बोला—वे लोग तो जनम के जलन्त, उनकी बात को लेकर कहां तक क्या किया जाय ?

उन दिनों पद्मिनी काकी प्रतिदिन एक नई सनसनीदार घटना की खबर लेकर मुनिया के निकट उपस्थित होती थी। आज रधिया देवी मैया के मन्दिर में धरना देने गई हैं, कि तुम्हारे पेट का लड़का नष्ट हो जाय। आज एक ओझा बुलाया गया है। बड़ा नामी ओझा है। उसके मन्तर का मारा हुआ पानी भी नहीं पीता। भगवान् जाने क्या होगा। रोज इसी प्रकार नई घटनाओं का उल्लेख करके वह मुनिया से कुछ-न-कुछ जोग-टोटके लिए झटक लेती थी।

किसी प्रकार इन मारन-मोहन-उच्चाटन वशीकरण से घोर युद्ध करता हुआ, कई महीनों का सुदीर्घ समय व्यतीत हो गया। आज मुनिया को लड़का होने वाला है। उसकी वर्षों की मुराद पूरी होगी। खाली गोद भर जायगी। जगन के इष्ट-मित्र भी चहक रहे थे—भाई ! भर पेट खिलाना पड़ेगा, यहां पौने तीन सेर से छटांक भर भी कम नहीं खाते। जगन प्रसन्नता-पुलकित होकर उत्तर देता—अरे इतना खिलाऊंगा कि खाते-खाते पेट फट जायगा। भीतर गांव की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियां बच्चे की सेवा-सुश्रूषा कर रही थीं। अन्य महिलाएं स्वयंसेविकाओं की तरह दूसरे-दूसरे कार्य में व्यस्त थीं, किन्तु न मुसाफिर का पता और न रधिया का। बाहर एक आदमी ने जगन से कहा--इस समय तुम्हें सब बैर भूलकर अपने भाई को बुलाना चाहिये था। जगन ने उत्तर दिया—"बुलाया भाई, पचासों दफे आदमी भेजा, खुद गया, जब आते ही नहीं तो क्या करूं ?"

भीतर की औरतें आपस में कह रही थीं, ऐसे समय में सब आदमी लाग-डाट भूल जाते हैं। भाई-भौजाई होकर भी वे लोग नहीं आए।

इस समय भी मुनिया कहने से न चूकी—चूल्हें में जांय वे लोग, नहीं आए यही अच्छा हुआ।

उस समय रधिया अपने घर में चिन्ता से चूर बैठी थी। ईर्ष्या से उसका कलेजा जल रहा था। बार-बार भगवान् को दोष दे रही थी, उसे क्यों लड़का हो रहा है,

मुझे क्यों नहीं हुआ ?

मुसाफिर को तो ऐसा मालूम होता था, जैसे उसका सर्वस्व लुट गया। अगर कहीं लड़का हुआ, तो मेरे घर-द्वार का भी वही मालिक होगा। आज तक उसने कभी अपने निःसन्तान होने के विषय में नहीं सोचा था। किन्तु अब यही बात तीर की तरह उसके हृदय को बार-बार बेध रही थी। गाल पर हाथ रखे वह इन्हीं ईर्ष्यामय विचारों में मग्न था। पड़ोस का शोर-गुल उसे ऐसा मालूम होता था, जैसे यह सब आयोजन उसी को चिढ़ाने के लिए किया गया है।

इसी समय मालूम हुआ, कि जगन के यहां लड़की पैदा हुई है।

मुसाफिर ने एक लम्बी सांस खींच कर कहा—"जाने दो, लड़का नहीं पैदा हुआ, यह अच्छा हुआ।"

यह उसके मन की वह प्रवृत्ति थी, जो निराशा के डाल पर भी सन्तोष के घोंसले बनाती है।

(३)

समय-पंछी उड़ता हुआ छः वर्षों का पथ और भी पार कर गया। जगन की लड़की मैना अपने द्वार पर बैठी हुई धूल के घरौंदे बनाती और बिगाड़ती नज़र आती थी। उसे देखकर मुसाफिर को क्रोध नहीं आता था, एक प्रकार का ममत्व जागृत हो उठता था। जी में आता था कि वह धूल-धूसरित बालिका को गोद में उठाकर चूम ले। वह दूर से बैठकर उसकी बालक्रीड़ा को देखता था और फूला न समाता था। मैना को गोद में लेने की बलवती इच्छा को वह कैसे दबाता था, वह उसके सिवा और किसी को नहीं मालूम।

आषाढ़ रथ-द्वितीया के दिन, उसीके गांव के समीप करौंदी में मेला लगता था। उस मेले में कोई खास बात नहीं थी। जगन्नाथ स्वामी के मन्दिर में खूब घड़ी-घण्टे बजाकर उनकी पूजा होती थी। सन्ध्या के समय मनुष्यों के रथ पर लदकर, देवताओं को एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर तक पहुंचा दिया जाता था। आस-पास के सभी गांव वाले वहां एकत्र होते थे, काफ़ी भीड़ जुट जाती थी। मुसाफिर भी वहां गया था। वहां खिलौनों की दुकान देखकर ठिठक गया। इच्छा हुई कि मैना के लिए कुछ खिलौने लेता चलूं। फिर सोचा—"मगर इसके लिए कहीं जगन या उसकी बहू कुछ कह दे तब ?" उसने इस इच्छा को बल-पूर्वक त्याग दिया और आगे बढ़ा। आगे भी खिलौने की दुकान थी। एक-से-एक अच्छे खिलौने भली-भांति सजाकर रखे हुए

थे। मुसाफिर रुक गया और दुकान की ओर देखने लगा। खिलौने सभी सुन्दर थे। जिसपर दृष्टि जाती थी, उससे आंखों का हटाना कठिन था। यदि इसमें से एक भी खिलौना मैना को मिले, तो वह कितनी खुश होगी। मुसाफिर की कल्पना की आंखों के आगे मैना उसके लिए खिलौनों को लेकर छाती से लगाई हुई दिखलाई पड़ने लगी। वह इसी आत्मविस्मृत दशा में दुकान के सामने जाकर खड़ा हो गया। एक खिलौना उठाकर पूछा—"इसका कितना दाम है ?"

छः आने !"

मुसाफिर को मानो होश हुआ। यह खिलौना मैं किसके लिए खरीद रहा हूं ! उसी के लिए जो मेरे बैरी की लड़की है। मगर अब क्या करता; दाम पूछ चुका था, अगर वहां से यों ही चल देता तो बड़ी हेठी होती। बस टाल देने के लिए बोला--"तीन आने में देते हो तो दे दो।"

"अगर लेना ही है तो चार आने से कौड़ी कम न लूंगा।"

अब तो सिर्फ चार पैसों पर बात अटक गई। अगर ले ही लूं तो क्या होगा। मेरा दुश्मन जगन है कि उसकी लड़की ? बेचारी बच्ची का क्या कसूर ? जैसे वह जगन की लड़की है वैसे ही हमारी लड़की है। बेचारी को मैंने कभी कुछ नहीं दिया। लोग अपने भतीजे-भतीजी को लाख-दो-लाख दे देते हैं, अगर मैंने एक चार आने का खिलौना ही दे दिया तो क्या दिया ? मुसाफिर जब खिलौनों को ख़रीद कर चला, तो उसके हृदय में जितना उल्लास था उतना ही झगड़े की आशंका भी थी।

सांझ के समय घर पहुंचा। मैना उस समय अपने पिता से पाई हुई सीटी बजा बजाकर खुश हो रही थी। इसी समय मुसाफिर जाकर उसके सामने खड़ा हो गया। खिलौना हाथ में रखकर कहा—"देख बेटी, यह खिलौना तेरे लिए लाया हूं, पसन्द है ?"

मैना खुशी से नाच उठी। बोली—"हां चाचा, खूब पसन्द है; अबकी मेला में जाओगे तो मेरे लिए एक हाथी, एक खरगोश और एक कछुआ लेते आओगे ?

"अच्छा लेता आऊंगा"—कहकर मुसाफिर ने उसे गोद में उठाकर चूम लिया।

मैना बोली—"तुम बड़े अच्छे आदमी हो चाचा, तुम मेरे लिए मेले से खिलौना ला देते हो, गोद में लेकर दुलार करते हो।"

मुसाफिर ने स्नेह से पूछा—"और तेरा बाप दुलार नहीं करता ?"

मैना सिर हिलाती हुई बोली—"नहीं वह दुलार नहीं करता, वह तो मुझे गोद में भी नहीं लेता ।"

(४)

एक दिन मुसाफिर गोद में मैना को लिए घर के भीतर गया, तो राधिया बोली, "तुम्हारे रंग-ढंग मुझे अच्छे नहीं लगते ।"

मुसाफिर ने सहज उत्सुकता से पूछा—"क्यों क्या हुआ ?"

"पराई बेटी के पीछे काम-धन्धा छोड़कर दिनभर पागल बने फिरते हो । अगर अपनी बेटी होती तो क्या करते ! कल खेत पर भी नहीं गये, सारा दिन बांस की गाड़ी बनाने में बिता दिया ।"

मुसाफिर ने हंसकर कहा—"पराई बेटी कैसे हुई ? क्यों मैना तू दूसरे की बेटी है ?"

मैना ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं ।"

"तब किसकी बेटी है ?"

मैना उसके गले में दोनों बाहें डालकर बोली, "तुम्हारी !"

मुसाफिर मुस्कराता हुआ गर्व से अपनी पत्नी की ओर देखकर बोला—"देखती हो ?"

रधिया ने कहा—"सब देखती हूं, लेकिन अगर कहीं कुछ हो गया, तो यही समझ लो कि तुम्हारे सिर का एक बाल भी नहीं बचेगा । जो कुछ असर-कसर बाकी है, वह भी पूरी हो जायगी ।'

मुसाफिर ने मैना को चूमकर कहा—"मेरी बेटी को क्यों कुछ होगा, जो कुछ होना होगा, सो इसके दुश्मन को होगा । क्यों बेटी ?"

मैना ने सिर हिलाकर अपनी सम्मति जता दी ।

रधिया ने मुंह फुलाकर कहा—"एक दफे कपार फुटवा ही चुके, अबकी मालूम होता है, मूंछे उखड़वाओगे ।"

मुसाफिर के दिल में कुछ चोट लगी । उसने सिर उठाकर कहा—"तुम तो मैना को फूटी आंखों भी नहीं देख सकतीं । यह मेरी गोद में नहीं आवे, तब तुम्हारा कलेजा ठंडा रहेगा ।"

रधिया तीव्र स्वर में बोली—"कौन कहता है कि मैना मुझे फूटी आंखों नहीं सुहाती ? बोलते कुछ लाज भी लगती है कि नहीं ! लड़के-बच्चे भी किसी के दुश्मन

होते हैं ? मैना को देखती हूं, तो गोद में लेने के लिए तरस कर रह जाती हूं, मगर करूं तो क्या, इसके मां-बाप ऐसे हैं, जिनसे दुश्मन भी भला । छोड़ देती हूं, कौन जाने मैना को दुलार करने से हमारी मालकिनजी रांड़-निपूती करने लगें ।"

इसी समय मैना अपन चचा की गर्दन झकंझोर कर बोली—"चाचा चाचा, चलो मुझे गाड़ी पर चढ़ा कर टहला दो ।"

"चल !"—कहता हुआ मुसाफिर उसे लिये हुए घर से बाहर चला गया ।

उस दिन मैना गाड़ी पर चढ़कर खूब घूमी; लेकिन जब उसकी छोटी-सी गाड़ी समस्त गांव की परिक्रमा करके लौटी, तो उसे कुछ ज्वर-सा हो आया था । मुसाफिर ने देखा कि उसका शरीर कुछ गर्म है । बोला—"घर चली जाओ बेटी, शायद तुम्हें बुखार आयेगा ।"

मैना ज़िद करने लगी—"नहीं चाचा, थोड़ा और घुमा दो । थोड़ा-सा । फिर घर चली जाऊँगी ।"

"नहीं नहीं, अब घर जाओ ।"

मैना मलीन मन गाड़ी से उतरकर घर चली गई । उस दिन वह बहुत उदास हो गई थी । चाचा यदि थोड़ा और घुमा देते तो क्या होता ?

(५)

दूसरे दिन मुसाफिर दिनभर मैना को नहीं देख सका । मालूम हुआ कि उसे ज्वर आया है । मुसाफिर दिनभर बहुत ही उदास रहा । खेत पर भी नहीं जा सका । बैल भूखे थे, उन्हें सानी देने की भी याद नहीं रही । मालूम होता था, जैसे वह निर्वासित कर दिया गया है । वह जहां बैठा था, दिन भर वहीं बैठा रह गया । रात हुई तो रधिया आकर बोली—"आज खाओगे नहीं क्या ?"

"ना, आज भूख नहीं है ।"

तुम तो मुफ्त में अपनी जान गवां रहे हो । जिन लोगों के लिए प्राण हत रहे हो, उन्हें तो तुम्हारी परवाह ही नहीं है । यह किसी से नहीं हुआ कि तनिक बुलाकर दिखला देते । हाय री बची, कल ही भली-चंगी थी, आज न जाने कैसे क्या हो गया ! मेरा तो जी चाहता है कि जाकर एक बार देख आती ।

मुसाफिर प्रसन्न होकर बोला—"चली जाओ न; देखती आना ।

रधिया ने कहा—जाती तो; लेकिन महारानीजी से डर लगता है कि कहीं डाइन कह कर बदनाम न कर दें । और तुम्हारा सपूत भाई भी कम नहीं है । ना, मैं नहीं

जाऊँगी; तुम्हीं जाओ।"

"तुम्हारे जाने से लोग बुरा मानेंगे, तो क्या मेरे जाने से भला मानेंगे ?"

"तो जाने दो; मगर चलो खालो। ऐसे कब तक रहोगे ?"

"जबतक मन करेगा।"

"भगवान् लोगों को दुख देते हैं, तो क्या सभी खाना छोड़ देते है ? दुनिया का काम तो सभी को करना ही पड़ता है।"

"खाऊंगा तो ज़रूर; लेकिन अभी भूख नहीं है।"

रधिया निराश होकर चली गई। मुसाफिर वहां बैठा-बैठा क्या सोच रहा था, यह वही जाने; लेकिन जब रात भींग गई, दस से ऊपर हो गये और रात्रि के सन्नाटे में कुत्तों का भूंकना जारी हो गया, तब मुसाफिर जगन के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया, दीवार से कान लगा कर, बहुत देर तक मैना की बोली सुनने की चेष्टा की; किन्तु निष्फल ही रहा। अन्त में निराश होकर घर लौट आया और चुप-चाप सो गया।

मैना तीर-चार दिनों तक तो बुखार में डूबी रही, पांचवें दिन सन्निपात हो गया। बचने की आशा जाती रही। मुसाफिर यह सब सुनता था और मन-ही-मन हाय करके रह जाता था।

आखिर एक दिन मुनिया के क्रन्दन से जगन का घर गूंज उठा। मुसाफिर के हाथ-पांव फूल गये। वह पागल की तरह दौड़ा हुआ जगन के आंगन में पहुंच गया। घबराया हुआ बोला—"जगन, जगन, क्या हुआ ?"

जगन रोता हुआ घर से निकला—"भइया, हम लुट गये, भइया, मैना !...."

मुसाफिर भी कातर भाव से हाहाकार करके रो उठा, हाय मेरी बेटी !.......

जब लोग मैना की लाश को उठाकर ले चले, उस समय मुनिया भी सिर के बाल खोले पगली की तरह रोती हुई जा रही थी। "हायरे ! मेरी भली-सी बच्ची को लेकर तुम लोग कहां जा रहे हो। लाओ उसे मुझे दे दो, वह दूध पीकर चुप-चाप सो जायगी। हायरे, मेरी बच्ची ! सुनो.......सुनो तो......."

इसी समय रधिया अपने घर से दौड़ती हुई निकली और मुनिया को पकड़ लिया। उसे अपनी छाती से लगाकर बोली—"न रोओ बहन, न रोओ ! भगवान ने हम लोगों को दुःख दिया है, तो सहना ही पड़ेगा।"

उस समय तक शव ले जाने वाले आंखों की ओट हो चुके थे।

○

: ११ :

खिलौने

जब सुबह का धुंधला प्रकाश आसपास के ऊंचे मकानों को पार करके अहाते में से होता हुआ उसकी अंधेरी कोठरी तक पहुंचा, तो बूढ़े खिलौने वाले ने आंखें खोलीं।

प्रभात के भिनसारे में उसके इर्द-गिर्द बिखरे हुए खिलौनों के ढेर, समुद्रतल से धीरे-धीरे उठती हुई चट्टानों की भांति दीख रहे थे। अपने डोलते से हाथ धरती पर टिकाकर वह उठ बैठा। वहीं बैठे-बैठे दुर्बलता के कारण हिलते-डोलते उसने अपनी कमर के मैले-कुचैले अंगोछे को ठीक किया, जिसमें कई पैबन्द लगे हुए थे और जिसका रंग मैल के कारण उसके शरीर तथा उस कोठरी की कालिमा ही का अंग बन गया था। फिर अपनी प्रायः ज्योतिहीन आंखों से टटोलकर उसने पास पड़ी लठिया उठाई और उसके सहारे उठ खड़ा हुआ।

कोठरी की चौखट में क्षण-भर को रुककर उसने अपनी मटमैली, प्रायः धूमिल आंखों से अहाते का निरीक्षण किया—यहां कोठरी से भी अधिक वीरानी छाई हुई थी। पर कोने में भट्टी खड़ी थी —बेरौनक और उदास—सन्तान के बाहुल्य से रुग्ण, पीतवर्ण मां की भांति ! इस एक महीने के अन्दर न जाने उसने किते झोल उतारे थे ? पास ही पके लाल, किन्तु टूटे-फूटे खिलौनों का ढेर लगा था। बाईं ओर चिकनी मिट्टी का तगार था जिसका तल सूखकर चटक गया था। शेष अहाते में वे सब खिलौने अस्त-व्यस्त बिखरे पड़े थे, जिन्हें उसका बेटा रूप और उसकी बहू कमला दिन-रात के कठोर परिश्रम पर भी तैयार न कर पाये थे। कर भी कैसे पाते ? रूप तो मेले से कई दिन पहले दुकानों की नीलामी पर भाइयों से लड़-लड़ाकर, हाथ-पैर तुड़वाकर घर आ बैठा था। कितना समझाया था उसने कि बेटा तू सबसे छोटा है, तुझे छोटा बनकर रहना चाहिए। वे बुरे सही पर तू क्यों बुरा बनता है ? किन्तु उसकी कौन सुनता था ? उसे तो सब मूर्ख, नाकारा और अपाहित समझते

थे ।

वहीं चौखट पर खड़े-खड़े उसने देखा—सैनिकों की एक लम्बी-पंक्ति रंगी हुई खड़ी है, किन्तु इन पर रोगन नहीं हो सका । एक ओर घोंसले बने रखे हैं, चिड़ियों का भी ढेर लगा है, किन्तु उन्हें घोंसलों में बैठाया नहीं जा सका । बन्दर और वे तने जिनपर उन्हें कलाबाज़ी लगानी थी, दोनों अव्यवस्थित पड़े हैं । फिर आमों, संतरों, नाशपातियों लोकाटों, सेबों, अंगूरों, मक्की के भुट्टों और बाजरे के सिट्टों के ढेर पड़े हैं—उसके अन्तर की गहराई से एक दीर्घ निश्वास निकल गया । और फिर लठिया के सहारे वह कांपता-डोलता बाहर की ओर चल पड़ा ।

किवाड़ के साथ नुमाइशी खिलौने थे । रूप इनमें से कुछेक ही समाप्त करके साथ ले जा पाया था । शेष सब अपूर्ण पड़े थे । वृक्ष के तने का एक भाग था, जिसकी खोह के मुंह पर एक तोता बैठा था और दूसरा प्रवेश कर रहा था । हिरणों की एक सुन्दर जोड़ी थी—कान उठाए, गर्दन न्योहड़ाये, चौकन्नी और चुस्त ! एक परी थी—पंख पसारे अनजाने आकाशों में उड़ जाने को प्रस्तुत !—अपनी धुंधली पथराई-सी आंखों से बूढ़े ने उन सब खिलौनों को देखा । यद्यपि ये खिलौने उसीके बनाए हुए सांचों पर उतारे गए थे, किन्तु वह हस्तलाघव और रंग तथा रोगन की वह सुदक्षता कहा ! इनमें से हरएक वह दस-दस बीस-बीस रुपये को बेचा आया करता था, किन्तु अब ये कौड़ियों के मोल बिकते थे । उसके ये बेटे—उन्हें भी वह अपने खिलौने ही समझा करता था, पर अब तो उन सबने उसे खिलौना समझ रखा था—निष्प्राण और निर्जीव-सा खिलौना ! माथे को ठीक कर उसने किवाड़ बन्द किए और ताला लगा दिया ।

पड़ोसी बनिए की हवेली के सामने बाजा बज रहा था, शायद बनिया अपने पहलौठी के बच्चे को लेकर बाबा सोडल की मन्नत पूरी करने जा रहा था । सोडल बाबा हैं जो दूध-पूत के दाता ! जब उसके घर कोई सन्तान न हुई थी तो उसने भी सोडल बाबा की मन्नत मानी थी कि जब उसके घर बच्चा होगा तो वह उसे लेकर बाजे-गाजे के साथ सोडल बाबा की सेवा में उपस्थित होगा । और जब उसके घर जग्गू हुआ तो मेले के ग्यारह दिन पहले उसने स्वयं चार प्यालों में गेहूं बोये थे, प्रति-दिन सुबह-शाम उन्हें शुद्ध पवित्र जल से सींचा था और यह देखकर उल्लास उसके अंगों में समा न पाता था कि पड़ोसियों के प्यालों के पीले-ज़र्द अंकुरों की अपेक्षा उसके प्यालों के पौधे गहरे हरे रंग के हैं और दो-दो बालिश्त ऊंचे हैं । इन सबका अर्थ यह था कि सोडल बाबा उसपर खूब प्रसन्न हैं । बाबा की पूजा क निमित्त मठरियां

बनाने के लिए वह अत्युत्तम गेहूं लाया था, मोटे-मोटे शर्बती रंग के, सूप में फटककर और पानी में भिगोकर उसने उन्हें बिलकुल साफ़ किया था। फिर ग्यारह दिन उन्हें धूप में सुखाया था। इस बीच में वह स्वयं उनकी रखवाली करता रहा था, ताकि देवता के चरणों में चढ़ने से पहले कोई चिड़िया उन्हें झूठा न कर जाय। मेले की पहली रात को उसने स्वयं अपनी पत्नी के साथ बैठकर मठरियां, शकरपारे और पापड़ियां बनाईं थी और जब मेले के दिन प्रातः दोनों हाथों में पूजा की थाली और गेहूं के प्याले थामे बाजे के पीछे-पीछे अपनी पत्नी और बच्चे के साथ वह सोडल की पूजा के हेतु चला था तो दूध और पूत देनेवाले सोडल के प्रति उसका मन श्रद्धा-भक्ति से ओत-प्रोत हो उठा था।

उस दिन की याद आते ही एक काले-कलूटे रोगी से युवक का चित्र उसकी आंखों के सामने घूम गया, पतले-पतले हाथ-पांवों और तिली के कारण बढ़ा हुआ पेट। यह जग्गू था, उसका पहलौठी का लड़का, जिसके जन्म पर बाजे-गाजे के साथ वह सोडल के मेले पर गया था, जिसके जन्म के साथ ही उसके मन में सुन्दर सपनों ने जन्म लिया था। किन्तु समय के साथ उसके सपने भी जग्गू ही की भांति पीले, बीमार और बेढंगे हो गए थे।

उसने बाबा सोडल की सब मन्नतें मानी थीं और प्रति-वर्ष बड़ी श्रद्धा से उनकी पूजा करता रहा था, और सोडल बाबा ने भी दूध और पूत से खूब ही उसकी गोद भरी थी। जग्गू के बाद उसके तीन लड़के हुए थे—सुन्दरी, हरी और रूप। बाबा सोडल हैं भी तो दूध पूत के दाता—किन्तु उनका काम दूध-पूत देना भर है, शेष जीवन से उन्हें कोई सरोकार नहीं, बाद को दूध चाहे फट जाय और पूत चाहे कपूत हो जाय।

दूध फट गया था और पूत कपूत हो गये थे। और वह अपने भाग्य को कोसता, भय और चिन्ता से चूर, भीड़ से बचता-बचाता, दुर्बलता के कारण कांपता-हांफता लठिया के सहारे चला जा रहा था। उसके सामने एक तूफान उठ रहा था और उसे अनुभव होता था जैसे यह तूफान उसके नीड़ के अन्तिम तृण तक बिखेर कर रख देगा, और वह चाहता था कि उड़कर वहां पहुंच जाय और पंख फैलाकर सीना ताने तूफ़ान के सामने खड़ा हो जाय। अपने घोंसलों को बचा ले, अपने बच्चों को बचा ले, किन्तु उसकी दशा उस पक्षी की-सी थी जिसके पंखों में इतनी भी शक्ति न रही हो कि वे पूरी तरह फैल सकें।

चारों भाइयों की दुकानें ज़मीन के एक ही टुकड़े पर साथ-साथ लगी हुई थीं।

पहले इस टुकड़े पर केवल एक दुकान लगती थी, फिर दो लगने लगीं, फिर तीन हो गईं और अब थीं चार ! प्रकट वहां अब भी एक ही दुकान लगी प्रतीत होती थी, किन्तु वास्तव में रूप और उसके भाइयों की दुकानों में एक अदृश्य दीवार आ खड़ी हुई थी ।

प्रातः इधर श्रद्धालु नगर-निवासी बाबा सोडल के दर्शनार्थ आने लगे । उधर चारों भाइयों में होड़ लग गई । सोडल के भक्त बड़े दरवाजे से आते, तालाब के पास बैठे हुए पुजारी के सामने पूजा के निमित्त लाई हुई मठरियां ढेरी करके, प्यालों को तालाब की सीढ़ियों पर फेंक, स्नान करते; फिर अपने पूर्वजों को पानी चढ़ाते और एक-एक पुरखे का नाम लेकर ग्यारह-ग्यारह बार तालाब की मिट्टी निकालते; तत्पश्चात् सपरिवार सोडल बाबा के मन्दिर की परिक्रमा करते और फिर खौंचेवालों की असंख्य दुकानों से खाते और बच्चों को खिलाते हुए खिलौनों की इन चारों दुकानों के सामने से गुज़रते, क्योंकि लौटने का दरवाज़ा इन दुकानों के पार्श्व ही में था ।

रूप की दुकान सबसे आगे थी, उसके बाद हरि की, फिर सुन्दरी की और आखिर में जग्गू की । रूप की चोटें अभी तक ठीक न हुईं थीं । वह दुर्बल भी था, इसलिए चुपचाप गद्दी पर बैठा था । उसके मुहल्ले के दो एक लड़के (मात्र विनोद के लिए) और कुच्छेक युवक (महज आंख सेंकने के हेतु) उसके काम में हाथ बंटा रहे थे । महीनों घर की कारा में बंधी तरुणियां अवसर पाकर मेले में स्वच्छन्द मृगियों की भांति विचर रही थीं । और इस उन्मुक्त सौन्दर्य का दर्शन करने के लिए खिलौनों की इन दुकानों से अच्छा कोई स्थान न था । मेले से लौटते हुए लोग इन्हीं दुकानों के आगे से होकर गुज़रते । उनमें से अधिकांश खिलौने भी खरीदते । तब खिलौने देते समय किसी युवती की आंखों में आंखें डाल देना अथवा रजत हाथों या मृदुल अंगुलियों के स्पर्श का आनन्द ले लेना कोई कठिन बात न थी । और वे सब युवक बड़े उत्साह से खिलौने बेच रहे थे ।

ज्यों-ज्यों रूप के खिलौने अधिक बिकते, हरि और सुन्दरी के मन में धुआं उठता ईर्ष्या-द्वेष का धुआं ! रहा जग्गू, तो वह ईर्ष्या और द्वेष से परे था । अपने फूले हुए पेट, कंकाल मात्र शरीर, लकड़ियों से सूखे हाथ-पांव लिए वह भीगी मिट्टी की तरह पड़ा था । सहसा हरि एक स्टूल पर खड़ा हो गया और आवाज़ें देकर खिलौने बेचने लगा । उसकी देखा-देखी सुन्दरी भी उठा, किन्तु रूप की दुकान पर एक के बदले दो लड़के खड़े हो गए ।

रूप के ओठों पर विजय की एक हल्की मुस्कान फैल गई । उसके तप्त हृदय

को निमिष भर के लिए सान्त्वना मिली। इस दुकान के लिए उसने भाइयों से छः रुपए अधिक दिए थे; हाथ-पांव तुड़वाये थे; सात दिन तक निर्जीव-सा पड़ा रहा था। अपनी इस सफलता को देख कर उसको जैसे अपने समस्त कष्टों का फल मिल गया। काश, वह सारे खिलौने समाप्त कर पाता।

वास्तव में जग्गू और सुन्दरी की अपेक्षा उसे हरि पर क्रोध था। यद्यपि जग्गू सबसे पहले अलग हुआ था, किन्तु उसकी पृथकता से भाइयों में किसी प्रकार की होड़ का सूत्र-पात न हुआ था और जब एक दिन सुन्दरी भी अपनी पत्नी को लेकर पृथक् हो गया, तो भी परिवार परस्पर मिलते-जुलते थे और दुकानें एक ही टुकड़े पर लगती थीं। किन्तु हरि ने अलग होकर उनके मध्य एक अगम्य खाड़ी बना दी थी। वह इतना चतुर और स्वार्थी था कि रूप उससे तंग आ गया था। दोनों बड़े भाइयों के अलग हो जाने के बाद रूप और हरि मिलकर काम करते थे। दोनों ने अपने विवाह पर कुछ ऋण ले रखा था। हरि ने रूप से कहा था कि हम दोनों मिलकर यह ऋण चुका देंगे। पहले तुम मेरा ऋण चुकाने में मुझे सहायता दो, फिर मैं तुम्हारे साथ मिलकर तुम्हारा ऋण चुका दूंगा। और जब दिन-रात के परिश्रम से, दूसरे भाइयों की अपेक्षा दुगने-तिगुने खिलौने बनाकर, रूप और कमला ने हरि का ऋण चुका दिया था और जब रूप का ऋण चुकाने की बारी आई थी, तो वह अलग हो गया था। इतना ही नहीं, उसने रूप के विरुद्ध दूसरे भाइयों को भड़काया भी था और फिर तीनों ने मिलकर उसके विरुद्ध एक मोर्चा लगा लिया था।

रूप के मन में बगूला-सा उठा और उसने क्रोध भरी दृष्टि से हरि की ओर देखा—उसने खिलौनों का मोल घटा दिया था। कड़ककर रूप ने अपनी आदमियों से कहा—"इकन्नी वाली चीज़ के दो-दो पैसे कर दो !" और लड़कों ने बड़े ज़ोर से आवाज़ लगाई "इकन्नी वाले खिलौने दो-दो पैसे में", "इकन्नी वाले खिलौने दो-दो पैसे में !"

काश वह सारे के सारे खिलौने समाप्त कर पाता ! दीवाली, दशहरा, ठंडड़ी, बाजड़े आदि सब मेलों में उसके भाइयों ने उसके मुकाबिले में दुकान लगाई थी, किन्तु कुछ अपने परिश्रम और कुछ पड़ोसियों की सहानुभूति तथा सहायता के कारण वह अपने भाइयों से बाजी ले गया था। एक मेले के समाप्त होते ही वह और कमला दूसरे की तैयारी आरम्भ कर देते। वसन्त पंचमी के मेले में उसके भाइयों ने खिलौनों का मोल कम कर दिया था। इसलिए वह सोडल के लिए इतने खिलौने बना लेना चाहता था कि इकन्नी वाले खिलौने पैसे-पैसे को भी बेंचने पड़े तो वह उन सबसे बाजी

ले जाय। और दिन-रात के परिश्रम तथा उद्योग से उन्होंने अगणित खिलौने तैयार भी कर लिए थे। वसन्त पंचमी के बाद ही वह और कमला एक प्रबल, अंधे हठ के अधीन सोडल के मेले की तैयारी करने लगे थे। रात के पिछले पहर उठकर, लैम्प के धीमे प्रकाश में, वे मिट्टी और सांचे ले बैठते और सुध-बुध खोकर सारा-सारा दिन खिलौने बनाने में निमग्न रहते। जब भूख लगती तो कुछ रूखी-सूखी खाकर फिर काम में जुट जाते। बैठे-बैठे थक जाते, तो रूप उठकर नये खिलौनों के लिए मिट्टी का तगार बनाने लगता और कमला धूप में सूखे हुए खिलौनों को भट्टी के पास ला रखती। वह मिट्टी बना लेता तो वह कमाने लगती। इस प्रकार थके हुए अंग कुछ खुल जाते तो फिर दोनों सांचे ले बैठते, शाम का भोजन भुने हुए चनों से हो जाता। साथ-साथ काम होता, साथ-साथ पेट को ईंधन दिया जाता। दिन चढ़ता, ढलता, और अस्त हो जाता; किन्तु उनके उत्साह में कमी न आती। उसी निष्ठा से वे काम में लगे रहते। रात का एक-एक बज जाता, किन्तु उनकी स्फूर्ति थकने का नाम न लेती। उनके हाथ उसी वेग से चलते। खिलौनों से फालतू मिट्टी उसी गति से उतारी जाती। सूखे हुए खिलौनों पर सफाई के लिए पानी का हाथ उसी तेज़ी से फेरा जाता—और इन्होंने इतने खिलौने बना लिए थे कि यदि वे सब पूरे हो जाते, उनपर रंग-रोग़न हो जाता, तो रूप अपने भाइयों को ऐसा पदाता......ऐसा पदाता......चाहे फिर वे इकन्नी का खिलौना अधेले-अधेले में ही बेचते, किन्तु उसके ये क्रूर भाई--टुकड़ों की नीलामी पर उन्होंने उसे बुरी तरह पीटा था और वे सब खिलौने अधूरे ही पड़े रह गए थे।

बात यह थी कि जहां पहले सब भाई मिलकर एक टुकड़ा आठ रुपये को लेते थे, वहीं अब उसी एक टुकड़े को चार भागों में विभक्त किया गया था। रूप के भाई चाहते थे कि अन्तिम टुकड़ा रूप को दिया जाय क्योंकि वह सबसे छोटा है, किन्तु सबसे अन्त में स्थान पाने का अर्थ यह था कि उसका एक खिलौना भी न बिके। उसके ये 'दयावान भाई कब किसी ग्राहक को उस तक पहुंचने देते। इसलिए वह अड़ गया था कि लेगा तो पहला टुकड़ा ही लेगा। इसपर उन चारों टुकड़ों में से पहला नीलाम हुआ था और पहले जहां सारे का सारा टुकड़ा आठ रुपये को बिकता था, वहां उसका चौथा भाग आठ को बिका। रूप ने उसे ले लिया। यद्यपि शेष टुकड़ों की बोली न हुई थी और उसके भाइयों को तीनों टुकड़े छः रुपये में मिल गये थे, किन्तु पहले टुकड़े के चले जाने का दुःख उनके मन में बना रहा। रास्ते में उन्होंने रूप को गालियां दीं और जब उसके मुंह से भी कुछ ऐसे-वैसे शब्द निकल गए तो

उन्होंने उसे खूब पीटा । जब वह घर आया तो बेतरह लोहु-लुहान था ।

रूप के दिल का बगूला आंधी बन चला । उस समय उसकी दुकान के लड़के आवाज़ लगा रहे थे, "इकन्नी का खिलौना दो पैसे में" ! "इकन्नी का खिलौना दो पैसे में !" तब हरि चिल्लया, "इकन्नी का खिलौना डेढ़ पैसे में !" रूप उठकर चीखा, "इकन्नी का खिलौना एक पैसे में !"

"तुम्हें अपने बाप की सौगन्ध तुम बैठे रहो !" कमला ने विनीत स्वर में कहा और हाथ खींचकर उसे बैठा दिया । रूप की दृष्टि कमला की ओर गई—ज्यों ही एक खिलौना बिक जाता, विद्युत्-गति से वह दूसरा उन्हें देती । यदि कमला न होती तो वह कभी भी मेले में आने की सामर्थ्य न पाता—रात-रात भर वह उसे गर्म ईंट का सेंक देती रही थी । उसकी देखभाल करने के साथ-साथ न केवल वह उसके लिए औषधि आदि लाती और खाना पकाती, बल्कि वह खिलौने बनाती, पकाती और रंगती रहती थी । उसमें कुछ ऐसा गुण था कि मुहल्ले भर के छोटे-छोटे बच्चे उनके आंगन में इकट्ठे हो जाते और हंसी-खुशी उनका हाथ बंटाते । कोई बने हुए खिलौनों को उठा-उठा कर धूप में रखता; कोई सूखे हुए खिलौनों को पकाने के लिए इकट्ठा करता; कोई पके हुए खिलौनों को खड़िया मिट्टी में रंगता और बीसियों छोटे-छोटे काम पलक झपकते हो जाते । बीमारी के उन छः सात दिनों में रूप को अपना कष्ट तनिक भी महसूस न हुआ था । इस समय, जब दूसरे भाइयों की पत्नियां रंग-बिरंगी धोतियां पहने, मिस्सी से ओठ रंगे, सिर में सरसों का तेल, आंखों में काजल और माथे पर बिन्दी लगाए मेला देख रही थीं, कमला वहीं मटमैली धोती पहने उसका हाथ बंटा रही थी—और उसके मैके में किसीने कभी मिट्टी को हाथ तक न लगाया था ।

तभी रूप ने देखा कि हरि उसके दुकान के सामने खड़े ग्राहकों को आवाज़ें दे रहा है । क्रोध से वह उठा—उसके दिल की आंधी तूफान बन चली । उस समय हरि ने उसके एक ग्राहक को कन्धे से खींचा । रूप ने ललकार दी । हरि ने उत्तर में गाली । रूप का क्रोध उसकी आंखों में लाली बन गया । उसने लाठी उठा ली और फलांग कर दुकान के नीचे आ गया ।

बूढ़ा खिलौनेवाला भीड़ से बचता-बचाता, कांपता-डोलता चला जा रहा था—ये इतने असंख्य लोग—ये सब खिलौने ही तो हैं; किन्तु ये सब अपने बनाने वाले को भूले हुए हैं—ठीक उसी प्रकार, जैसे उसके खिलौने उसे भूल गए थे, किन्तु शायद वह महान् निर्माता भी उसकी भांति बुड्ढा हो चला है ।

उसने एक दीर्घ-निःश्वास लिया । वह इतना रास्ता, जो कभी वह खिलौनों का

सबसे बड़ा टोकरा सिर पर उठाए एक डेढ़ घण्टे में तय कर लेता था, अब बड़ी कठिनाई से तीन चार घण्टे में पार कर पाया था । सहस्त्रों लोग सोडल की पूजा करके अपने कामों पर जाने लगे थे । वह शायद लौट जाता, शायद थककर रास्ते में बैठ जाता किन्तु एक अज्ञात प्रेरणा उसे बरबस आगे धकेल रही थी । उसकी आखों के सामने तूफान प्रतिक्षण अग्ररूप धारण कर रहा था । उसे लोगों की भीड़, खोंचेवाले, सबीलें, दुकानें, कुछ भी दिखाई न दे रहा था और यह अनुभव कर रहा था जैसे यह तूफान उसके नीड़ के तिनके-तिनके बखेर देगा । वह इस तूफान के सामने छाती फुलाकर डट जाना चाहता था ।

बड़ी कठिनाई से स्वयं-सेवकों की मिन्नत करके वह दुकानों के पीछे से दाखिल हुआ । किन्तु जब वह दुकानों के पास पहुंचा तूफ़ान उसके घोंसले को अपनी लपेट में ले चुका था । लाठियों के प्रहारों से खिलौनों की दुकानें बिखर चुकी थीं और भाई-भाई एक दूसरे पर टूट चुके थे । बूढ़े का कम्पन सहसा बन्द हो गया । उसकी कमर न जाने कैसे सीधी हो गई ? उसकी थकान न जाने कहां उड़ गई ? क्षण-भर के लिए उसने अनुभव किया जैसे वह वही खिलौनेवाला है और वे उसके बनाए हुए खिलौने हैं, जो आपस में गड्मड् हो रहे हैं और उसे उनको फिर यथास्थान रख देना है । वह लठिया उठाए हुए उस तूफ़ान में घुस पड़ा ।

मेला समाप्त हो गया—रूप, हरि और सुन्दरी मेले के अस्पताल में पट्टियां बांधे पड़े थे । चारपाइयां, लकड़ी के तख्ते और टीन के खाली कनस्तर, जिनसे वे दुकानें खड़ी की गईं थीं और वे खिलौने, जो उन दुकानों में सजाये गए थे बिखरे पड़े थे । उन सब के मध्य एक औंधी चारपाई के नीचे बूढ़ा खिलौनेवाला मरा पड़ा था—संसार के उस आदि कलाकाल की भांति बेबस, जिसने खिलौने बनाकर उनपर अपना अधिकार खो दिया है, और स्वयं एक खिलौना बन गया है—निस्पन्द और निष्प्राण ! लाठियां अब भी उसके हाथ में उठी हुईं थी मानो वह अब भी उस तूफ़ान का सामना करना चांहता था । किन्तु वह अज्ञात प्रेरणा कदाचित यहां आकर खत्म हो गयी थी और उसके मुंह पर मक्खियां भिनभिना रही थीं ।



: १२ :

नुमायश

नुमायश का अहाता बनकर तैयार हो चुका था । बीच-बीच में फुलवारी की क्यारियां लग चुकी थीं । दुकानों और बाज़ारों की व्यवस्था भी करीब-करीब हो ही गई थी । कुछ सजधज का काम अभी कहीं-कहीं बाकी था । मिस्त्री बिजली का तार लिये घूम रहे थे । कुछ पेड़ों पर चढ़े बल्ब टांगने पर लगे थे । रविशों पर सुर्खी बिछ रही थी । बड़े गेट को सजाया जा रहा था ।

संतू, लगभग सात वर्ष का एक लड़का जो कुछ ही दूर पर अंधी मां के पास बैठा था, टकटकी लगाये यह सब देख रहा था, बोला—"मां !"

"हां !"—मां बोली ।

"नुमायश होगी यहां ?"

"क्यों ?"

"पारसाल की तरह सब हो रहा है ।"

"कोई खेल आया होगा ?"

"नहीं, मां ! लोग कहते जा रहे थे ।"

"सच ?"

"हां ।"

"होती होगी । अच्छा है, दो पैसे मिल जाया करेंगे ।"

"जैसे पारसाल, ऐं मां !"

"हां ।"

"पारसाल तुमने हमें टिकट नहीं दिलाया था ।"

"कैसा टिकट ?"

"नुमायश का ।"

मां ने कुछ उत्तर न दिया ।

"क्यों मां !" वह फिर बोला ।

वह फिर चुप थी ।

"बोलती नहीं ।"

"बेकार की बातें मुझे नहीं आतीं ।"

"अच्छा, दिलाया था ।"

"नहीं दिलाया था ।"

"क्यों ?"

"चाहती नहीं थी ।"—हंसते हुए उसने कहा ।

संतू चुप हो रहा । जानता था, खिन्न होने पर ही मां ऐसे हंसती हैं । उसकी निगाह फिर उस अहाते पर टिकी रही । कुछ देर बाद अकुलाया-सा फिर बोला—"अच्छा, मां !"

"मां ।"

"अबकी दिला दोगी ?"

"दिला दूंगी ।" अन्यमनस्क-सी हुई वह बोली ।

"नहीं ?" उसने फिर पूछा ।

"दिला दूंगी कहती तो हूं ।"—मां ने तब ज़ोर से कहा मुस्कराहट को दबाने के प्रयत्न में दोनों ओंठ ज़ोर से सटा लिये ।

"कहती ही हो बस ।"—सन्देह से मां के ओठों की तरफ देखता हुआ वह बोला ।

"ऐसा ही सही ।" मां ने कहा ।

"अच्छा, सच बताओ मां, दिलाओगी कि नहीं ?"—जी भर कर ज़ोर लगाकर संतू ने विनय की ।

हृदय की इस अपील पर अंधी चुप रह गई । झूठ बोलना भी उतना ही कठिन हो गया, जितना सच ।

"क्यों मां !"—सन्तू ने फिर पूछा ।

"अच्छा, देखूंगी ।"—गंभीर होकर अंधी बोली, जैसे एक बड़ा बोझ उसके ऊपर आ गया हो ।

सन्तू प्रफुल्ल हो उठा और एक ओर से कुछ आदमियों को आते देख मां को कुहनी लगाई । इशारा समझ कर अंधी ने कहना शुरू किया—'बाबू अंधी मुहताज को, बाबू......"

दो दिन बाद । नुमायश का उद्‌घाटन हो रहा था । गेट पर बहुत भीड़ थी । सड़कें भरी आ रही थीं । रंग-बिरंगी पोशाक में संवरे हुए स्त्री, पुरुष और बच्चे आतुर होकर गेट की ओर बढ़ रहे थे ।

एक तरफ जहां मोटर रुकती थीं, अंधी भिखारिन सन्तू का हाथ पकड़े इधर-उधर डोल रही थी। वह कहती जाती थी—"बाबू ! अन्धी मुहताज को... ...."

सन्तू कभी गेट की ओर देखता कभी पों-पों करती मोटरों की ओर और कमी उत्सुक हो उमड़ती हुई उस भीड़ की ओर। बीच-बीच में बुढ़िया की मुंह की ओर भी देख लेता—जैसे कुछ कहना चाहता हो। उसकी बात उसकी आंखों पर आ अटकी मालूम होती थी; पर अंधी निर्विघ्न चिल्ला रही थी—बाबू ....."

रात के ग्यारह बज गये। सन्तू मां का हाथ पकड़े घूमता ही रहा। आखिर वह थक गया। खड़ा रहना मुश्किल मालूम होने लगा।

बोला—'मां !'

"हां।"

"कितने पैसे हो गये ?"

"तू नहीं जानता क्या ?"

"चार अभी नहीं हुए।"

"हो गए।"

"तो टिकट मिल जायगा।"

"मिल जायगा पर रोटी नहीं।"—अंधी हंसकर बोली। संतू समझ गया। वह चुप हो गया। उसकी निगाह मां के मुंह पर थी। कुछ सोचता सा फिर बोला—"रोटी नहीं खाऊंगा।"

"अच्छा भैया। पेट पर तो कभी यों ही नहीं मिलता, आज पूरा ही फाका सही।.......पर संतू ! मुझसे तो उठा न जायगा। देख लो, कुछ आज ही की बात नहीं, कल को भी किसी के पैर चाहिए।"

संतू ने कुछ न कहा, और अंधी फिर उसी रट में लग गई और लगी रही, जबतक कि वहां सुनसान न हो गया।

प्रतिदिन शाम को वैसे ही भीड़ होती थी। वैसा ही स्त्रियों, पुरुषों बच्चों का एक समुद्र आनन्द से हिलोरें लेता था। सन्तू भी उन्हींमें हर रोज घूमता रहा। स्वयं दर्शकों में उसकी गिनती भले ही न थी; पर दर्शकों का भी एक दर्शक वह था। उनको देख-देखकर उसे कुछ नुमाइश का आनन्द आ जाता था। उनमें उसका हित था। उनकी वृद्धि और समृद्धि को देखकर वह खुश भी होता था। जैसे-जैसे भीड़ बढ़ती, जैसे-जैसे मोटरों और एक्का बग्घियों की कतार लम्बी होती, उसकी सोई हुई आशा भी वैसे ही वैसे जगती जाती और उसके जल्दी-जल्दी उठते हुए कदमों के पीछे अंधी घिसटने लगती।

किन्तु गेट से निकलते हुए सज्जनों को भी वह देखता था बहुत से हम-उम्र होते थे, कुछ अधिक उम्र के और कुछ कम उम्र के। कोई कुछ तारीफ करता निकलता, कोई कुछ। वह परेशान-सा अंधी को लेकर उनके सामने हाजिर होता। वे बचकर निकल जाते, वह खड़ा देखता रह जाता। पर वह एक जगह खड़ा नहीं रह सकता था, क्योंकि बुढ़िया का हाथ उसके हाथ में बराबर चलते रहने का तकाजा किया करता था।

कई दिन हो गए थे। नुमाइश भर रही थी। आज कुछ ज्यादा लोग आ रहे थे ख़रीदारी भी अधिक हो रही थी। दुकानदारों ने चीज़ें आज पहले से कुछ सस्ती कर दी थीं। लगभग सभी लोग कुछ-न-कुछ हाथ में लिये गेट से निकल रहे थे। कुछ गोद भरे चले आ रहे थे और कुछ के पीछे कुली लदे थे। अधिकांश बच्चों के हाथों में खिलौने थे। सन्तू भी अपनी आशा का टूटा-सा खिलौना लिये वहीं मौजूद था। आज वह विशेषतः दौड़-धूप करता दिखाई दे रहा था। मां ने वादा किया था कि अगर चार भी पैसे मिले, तो वह उसे दे देगी। जैसे-तैसे भीड़ को चीरता हुआ जल्दी-जल्दी एक से दूसरे सज्जन के सामने वह अपनी अन्धी मां को पेश कर रहा था। मां चिल्ला रही थी--"बाबू अंधी मुहताज को" पर वह समय ही ऐसा मालूम होता था कि किसी को उस अंधी के हाथ की ओर देखने की गुंजाइश या फुर्सत न थी।

सन्तू, इधर से उधर, उधर से इधर ताना बिनता ही रहा बहुत देर हो चली। उसने बार-बार मां की मुंह की ओर देखा कि शायद कुछ और उपाय बतलाये; पर पूछने की हिम्मत न हुई। भीड़ हल्की हो रही थी। आ कम रहे थे जा अधिक। संतू को वह दिन भी जाता ही मालूम हुआ आखिर वह बिना पूछे नहीं रह सका।

बोला—"मां।"

"हां।"

"पैसे हो गए।"

"ला तो फिर।"

"बस एक पैसे की कमी है।"

"कमी है ?"

"हां।"

सन्तू चुप रहा। किन्तु उसकी खामोशी की वजह समझ कर मां ने कहा—"और देखो, शायद मिल जाय।"

सन्तू फिर अन्धी का हाथ पकड़ कर इधर-उधर घूमने लगा। वह चिल्लाने लगी—"बाबू! एक पैसा।"

वह बहुत बेचैन हो रहा था। जिन-जिन बाबुओं को वह मोटर की ओर जाते देखता, जिन-जिनको बहुत मोटा-ताजा पाता था, या जिन-जिन के बच्चे बहुत खिलौने लिये गेट से निकलते, नज़र पड़ते, उन्हींकी ओर उसके पैर खुद-ब-खुद चल पड़ते। पर वे लोग अपने ही में कुछ इतने मशगूल मालूम होते कि उस ओर उसका ध्यान ही न जाता।

जानेवाले आगे को बढ़े ही चले जाते थे। मोटरवाले मोटर में बैठ आंखों से ओझल हो जाते थे। अंधी मां को ख़बर भी न होती थी कि कब कौन गया। वह उसी एक ओर मुंह किए चिल्लाती रहती, जब तक कि संतू के हाथ का इशारा न मिलता।

संतू बहुत बेचैन था। एक पैसे की कमी थी। किसी एक बाबू का इशारा बाकी था। उसीकी वह खोज में था; पर कोई मिल नहीं रहा था। यह साल भी यों ही चला जायगा, यह सोच-सोचकर वह गेट की तरफ देख लेता था। आखिर उसने देखा, एक बाबू बुकिंग आफिस पर खड़े टिकट ले रहे हैं। सन्तू ने अंधी को वहां ले जा खड़ा किया। अंधी ने जैसे कलेजे से पुकारकर कहा—"बाबू! एक पैसा अंधी को भी।"

किन्तु बाबू खिड़की से टिकट खरीद, हाथ में ले गेट की ओर घूमने लगे। संतू से न रहा गया। उसका मुंह अनायास ही कह उठा—'बाबू।"

"क्यों?"

"क्या आज नुमायश न रहेगी?"

"कैसे?"

"सामान जा रहा है।"

"तो?"

"हमने नहीं देखी।"

"अगले साल देख लेना।"—अन्धी बोली और ठपाका मार कर हंस पड़ी। संतू उसके मुंह की ओर देख रहा था।

"हमने नहीं देखी।" अन्धी ने फिर संतू की बात को दुहराया, और ज़ोर से हंस पड़ी! संतू देख रहा था।

○

: १३ :

जीजी

"यही हैं ?" आश्चर्य से इन्दु ने पूछा ।

"हां" उपेक्षा से गर्दन हिलाकर सुरेखा ने उत्तर दिया ।

"अरे !" इन्दु ने एक टुकड़ा समोसे का मुंह में रखते-रखते कहा—"अच्छा हुआ सुरेखा तुमने मुझे बता दिया, नहीं सच जानो मैं तो कहने वाली थी कि मिश्रानीजी समोसे तो तुम बढ़िया बना लेती हो ।"

"ऊंह तो क्या होता—इन्हें कोई देखनेवाला इससे अधिक समझ भी क्या सकता है ? दिन भर हाथ में झाडू लिये घर की सफाई में जुटी रहती है । पोज़ीशन का ख्याल तो इन्हें कतई है ही नहीं, मुझे तो बड़ी शरम लगती है इन्हें अपनी नन्द बताते ।"

"शायद गांव में रही है ?"

"कोई भी नहीं"—सुरेखा ने मुंह बिचकाकर कहा,—"शहर में पैदा हुई, शहर में पली, विवाह बेशक गांव में हुआ, किन्तु वहां रही कितने दिन ! जभी विधवा हो गई और तब से बारह साल होने आये यहीं हैं । पर इस घर का तो वातावरण ही बिगड़ा हुआ है । लीला ही को लो, उसे कोई कहेगा भला कि 'नाइंथ' में पढ़ती है । नारायण और जगदीश को तो कुछ पूछो मत, ढंग से कपड़े पहनने भी नहीं आते—"

"पर मिस्टर गिरीश तो ऐसे नहीं हैं ।"

"वह तो इलाहाबाद में रहे हैं । नहीं तो शायद अपनी इन जीजी रानी के 'अण्डर' में रहकर वह भी 'बछिया के ताऊ' ही रह जाते... ।"

इन्दु धीरे-धीरे हंसने लगी ।

बाहर से लक्ष्मी ने पुकार कर कहा—"बहू ! कुछ चाहिए तो मोहना से कह देना । मैं ज़रा जप करने बैठती हूं ।"

सुरेखा के माथे पर बल पड़ गए । बोली—"कितनी बार कह चुकी हूं कि मुझे बहू न कहा करो, मानती ही नहीं !"

"तो क्या हरज़ है, कहने दे। लेकिन यह ठीक दोपहर को जप कैसे होगा ?"

"इनकी लीला ही निराली है। यही जानें"—सुरेखा ने उपेक्षा से कहा—"ईश्वर जाने किस धातु की बनी है। दिसम्बर की इस भरी सरदी में चार बजे सवेरे बर्फ-जैसे ठण्डे पानी से नहाती हैं। फिर तीन घण्टे जप करती हैं। आज मोहना को बुखार था। इसीसे गाय की सानी-पानी के झंझट में आधा जप ही कर पाई थीं।"

इन्दु ने आश्चर्य से लम्बी सांस छोड़ी—"बाप रे ठण्डे पानी से नहाना !"

"बस कुछ पूछे मत। चाहे सारा दिन बीत जाय, पर जबतक उस शालिग्राम की बटिया को दो लोटे जल में डुबकी न दे लें, मजाल क्या जो पानी की एक बूंद भी गले के नीचे उतारती हो। दो-दो नौकर हैं, मिश्रानी है, फिर भी खिटपिट कर सारा दिन जाने किन कामों में गंवा देती हैं और हर तीसरे दिन एकादशी, पूरनमासी के व्रत करती रहती हैं........।'

"तेरे रंग-ढंग तो इन्हें काहे को पसन्द आते होंगे"—इन्दु ने मुस्कराकर पूछा।

"न आवें, मेरी बला से। यहां परवाह कौन करता है ! मैं तो वही आठ बजे सो कर उठती हूं, तबतक सब काम हुआ पाती हूं, मेरी चाय एक टेबिल पर रखी होती है--बात यह है कि होती कोई अनपढ़ गंवार लड़की, तो यह उसे ज़रूर दबा लेतीं..........!"

"पर यहां तो श्रीमती सुरेखा रानी आई. ए. से पाला पड़ा है न—"

इन्दु बीच में ही बोल उठी.......'चल' कुकर बहुत अच्छी है, मुझे तो फायदा ही है !"

"फायदा क्या मिश्रानी तो रखनी ही पड़ती है। पर जबतक चार तरकारियां अपने हाथ से न बना लें, तबतक इन्हें चैन थोड़े ही पड़ता है। मुझे तो बड़ा गुस्सा आता है, सारे नौकरों की आदतें ख़राब कर दी हैं, आधा काम बंटा लेती हैं उनका ! दो-दो नौकर हैं, फिर भी जगदीश और नारायण को अपना दोपहर का भोजन करने स्कूल से आना पड़ता है। माना स्कूल दस क़दम पर है। लेकिन नौकर होते आखिर किस मर्ज की दवा हैं। लीला को देखो संस्कृत के सैंकड़ों श्लोक रटे बैठी है। तुलसी और सूर को घोटकर पी गई है। लेकिन इंग्लिश इतनी भी नहीं कि एक मामूली लेटर तो लिख ले......!"

इन्दु थोड़ी देर और बैठी। फिर चली गई। मामा के यहां आई हुई थी, इसलिए सुरेखा से मिलने चली आई। पारसाल तक दोनों एक ही कालिज में पढ़ती रही थीं।

सुरेखा आराम कुर्सी पर पड़ी-पड़ी उपन्यास पढ़ने लगी। फिर सो गई।

सूरज का गोला जब चक्कर खाकर पश्चिम के अतल नील जल में डूब गया तब सुरेखा की नींद टूटी। सुना लक्ष्मी पुकार रही थी—"बहू! ओ बहू!"

"क्या है जीजी!" सुरेखा ने चिढ़े हुए स्वर में ऊपर से ही पूछा।

"नीचे तो आओ ज़रा—!"

सुरेखा की इच्छा हुई न जाय। फिर जाने क्या सोचकर शीशे के सामने आ खड़ी हुई। बाल संवारे। मुंह पर ज़रा-सी क्रीम मली और नीचे उतर आई।

"क्या काम है?" कुछ तिनककर, कुछ ठसककर-जैसे बोली।

"काम तो कुछ नहीं," लक्ष्मी गाय के लिए दाना दलते-दलते बोली—"संध्या-बेला बहू-बेटियों को लेटे न रहना चाहिए। आरती का समय भी होने आया।"

"आरती!"—सुरेखा तिनककर बोली "बस इसीलिए मुझे कच्ची नींद जगाकर सिर में दर्द कर दिया।"

सारा चौका दुबारा धुला, चूल्हा पोता गया। फिर गंगाजल छिड़कने के बाद चूल्हे में आंच जली। तवे को चिमटे सहित उठाकर लक्ष्मी ने दूर फैंक दिया। और मिश्रानी से बोली "अब से मेरी कच्ची रसोई में कभी हाथ मत लगाना। समझी!"

मिश्रानी चिड़ उठी—"जीजी! तो मुझपर क्यों बिगड़ रही हैं? बहूरानी ने कहा तो मैंने अण्डे बना दिए।"

"बहूरानी ने कहा और तूने बना दिए। भली ब्राह्मणी है तू तो। यह काम मोहना नहीं कर सकता था क्या? और फिर रसोईघर में बनाने की क्या ज़रूरत थी? अलहदा अंगीठी रख कर क्यों न बनाए।"

मिश्रानी मुंह भारी करके ऊपर चली गई।

सुरेखा बैठी हुई आमलेट खा रही थी। नीचे की कुछ-कुछ भनक उसके कानों में भी पड़ गई थी।

"क्या हुआ मिश्रानीजी?"

"हुआ क्या बहूरानी, तुम मेरी नौकरी छुड़वाओगी। देखो, जीजी कितनी बिगड़ रही हैं?'

"वे कौन होती हैं नौकरी से हटानेवाली। मैं न चाहूंगी, तो वे कैसे निकाल देंगी तुम्हें?" सुरेखा ने प्लेट एक तरफ हटा कर रुमाल से मुंह पोंछते हुए कहा।

"सो तो ठीक है बहूजी—"मिश्रानी का स्वर धीमा पड़ा—"पर बहूजी हुक्म तो वह ऐसा ही चलाती हैं-भला इतना परहेज़ कौन निभा सकता है? तुम्हें तो जैसे वे खेत की मूली भी नहीं गिनतीं।"

सुरेखा झमक कर भुन-भुनाती हुई नीचे उतरी। लक्ष्मी उस समय भारी मुंह किए तवे पर कूटू के परांवठे उतार रही थी; आज पूरनमासी का व्रत जो रखा था।

"जीजी !"—सुरेखा ने तीखे स्वर में कहा—"क्या कह दिया मिश्रानी को ? ऐसे कहीं नौकर टिकते हैं !"

लक्ष्मी सन्न रह गई। इतना कड़ा स्वर आज पहली बार ही उसने सुना था। यकायक वह कुछ सहम-सी गई ! एक क्षण चुप रहकर बोली, "टिके या न टिके, पर मैं तो अपना धर्म-कर्म नष्ट नहीं कर सकती !"

"नानसेन्स ! बड़ा सुन्दर धर्म है—हाथ लगते ही छुई-मुई हो जाय !"

लक्ष्मी बहुत नहीं बोलती है। इस घर में वह जन्म से ही है। अम्मा और बाबूजी ने कभी उसकी बात नहीं टाली। उसकी बात सदैव रखी गई है। रखने की बात भी थी। इसी घर और घर के प्राणियों के पीछे अपनी ससुराल के भरे-पूरे घर की उपेक्षा कर दी थी उसने। इन्हीं छोटे भाई-बहनों के स्नेह से बंधकर वह अपनी जान को जान नहीं समझती थी। उसीके हाथों से सब पले थे। दो दिन की आई बहू के वचन तीर से लगे। तवे का परांवठा उतार कर वह वैसे ही रसोई छोड़कर उठ गई।

सुरेखा ऊपर चली जा चुकी थी।

दोपहर होने को आई। लीला ने ऊपर आकर कहा—"भाभी, नीचे जीजी बुला रही है !"

"क्यों ?"

"कोई दो-तीन औरतें आई हैं !"

"अच्छा ! अभी मेरी 'मुंह दिखाई' से उनका मन नहीं भरा ! चल आती हूं !" और सुरेखा साड़ी बदलने लगी।

पूरे आधे घंटे में ड्रेस करके सुरेखा नीचे उतरी।

"बहू, यह तुम्हारी चाची लगती हैं, और यह भाभी'—लक्ष्मी ने स्निग्ध स्वर में कहा, "पैर छू लो इनके !"

सुरेखा के भवों पर बल पड़ गये। दमभर चुप रहकर धीरे से उन स्त्रियों से बोलीं,—"नमस्ते !" फिर कुर्सी पर कोहनी टेक कर खड़ी हो गई।

लक्ष्मी का मुंह लाल हो गया। सुरेखा दो मिनट खड़ी रही। फिर लीला से बोली—"लीला चलती हो हमारे साथ, मिसेज़ शुक्ला के यहां जाना है मुझे।"

लीला चुप रही। उसने बहिन की ओर देखा। लक्ष्मी से अब रहा न गया।

भारी स्वर में बोली,—"वह न जायगी।"

"जायगी कैसे !" सुरेखा ने तिनक कर कहा,—"बाहर की हवा लगेगी तो लड़की बिगड़ न जायगी !"

"यही समझ लो,"—लक्ष्मी ने वैसे ही स्वर में उत्तर दिया, "जब हमारे घर दो स्त्रियां बैठी हैं, तो उन्हें छोड़कर वह कहीं नहीं जायगी।"

कुछ लोगों को दूसरों की बुराई करने में मज़ा आता है। उस बुराई भलाई में अपना निजी स्वार्थ चाहे न भी हो, किन्तु बिना इधर की उधर लगाए जैसे उनकी रोटी हज़म नहीं होती। मिश्रानी कुछ ऐसे ही जीवों में से थी। उसे लक्ष्मी से चिढ़ थी। जबतक वह नियमपूर्वक सुरेखा से उसकी बुराई न कर लेती, उसे कल न पड़ती। यूं तो लक्ष्मी अब सुरेखा से अधिक सम्पर्क ही न रखती थी। अपने काम से काम। फिर भी सुरेखा को ननद का कोई भी काम हो, यहां तक कि उठना-बैठना सभी कुछ गंवारपन दिखाई देता था।

लक्ष्मी मोहना को गाय के लिए भूसा देने गई थी। मिश्रानी ने अकेला पाकर सुरेखा को सुना कर कहा—"बिना पैसे की गरमी पाए भला किसीमें इतनी तेजी हो सकती है ? और जब सदा से ताली-कुंजी इन्हींके पास रही हो !"

अकस्मात् मिश्रानी का मुंह फ़क़ हो गया। लक्ष्मी की धोती का आंचल दीख पड़ गया था उसे ! सुरेखा ने उसे चुप होते देख मुड़कर देखा और सिक्त स्वर में बोली—"छिप कर किसी की प्राइवेट बातें सुनने की सभ्यता इसी घर में देखी है।"

लक्ष्मी ने सतेज स्वर में उसी तीव्रता से उत्तर दिया—"और छिप कर दूसरों की बुराई करना शायद आजकल की शिक्षा में शामिल है। मैं बातें सुनने नहीं, तुमसे चाय पीने को पूछने आई थी।" —और कमर से तालियों का गुच्छा निकाल कर उसने झम से कमरे के फ़र्श पर फेंक दिया—"लो सम्भालो अपना ख़ज़ाना।"

"गिरीश, मैं थोड़े दिन के लिए जगतपुर जाऊंगी। रमेश की चिट्ठी आई है कि बहू बीमार है।"

"तो जीजी !" गिरीश ने इतस्ता करके कहा—"फिर यहां का काम कैसे चलेगा ?"

"सब चल जायगा। अब तो बहू आ गई हैं न, आप सम्भाल लेंगी।"

बहू यानी सुरेखा घर चलाएगी। गिरीश चुप हो गया।

गिरीश की चुप्पी चिटक कर सुरेखा को जैसे चिनगारी सी लगी, बोली—"नहीं जीजी, जाना मत हरगिज़ भी, नहीं तो देख लेना इस घर में कोई जीता न बचेगा।"

लक्ष्मी ने उत्तर नहीं दिया । अपने ठाकुरजी को पोटली में बांध कर रखने लगी ।

गिरीश आफिस चला गया ।

और दो बजे की ट्रेन से लक्ष्मी मोहना को लेकर अपनी ससुराल चली गई ।

साढ़े तीन बजे बच्चे स्कूल से लौटे । घर में एक अस्तव्यस्तता-सी फैली थी । लीला ने रसोईघर झांका, पूजा की कोठरी देखी और फिर बैठ कर रोने लगी उसकी जीजी कहीं नहीं थी ।

सुरेखा माथे पर हाथ रखे लेटी थी । उसे रोते देखकर बोली—"इतनी अधिक भावुकता संचित है, तो फिर उपन्यास लिख डालो न । कुछ काम ही आएगी ।"

लीला भाभी के भय से चुप हो गई । नारायण और जगदीश रसोईघर में बैठे सवेरे की रोटी खा रहे थे, क्योंकि आज जीजी तो थी नहीं, जो पहले से ही ताज़ा हलुवा बनाए रखती ।

नौकर ने आकर पुकारा—"बहूजी ! गाय की सानी का सामान निकाल दो ।"

सुरेखा ने ताली फेंक कर कहा—"जा निकाल ले ।"

नौकर घबरा गया, बोला--"जी, सानी तो मोहना करता था, मुझे मालूम नहीं कि क्या-क्या देना होगा ?"

सुरेखा अजब मुश्किल में फँसी । गाय का भूसा-दाना तो दूर, उसने आज तक किसी को रसोई का आटा-दाल तो दिया ही न था; किन्तु अपनी यह अज्ञता वह नौकर को कैसे दिखाती । "अच्छा ठहरो" कहकर वह ऊपर पहुंची । पुस्तकों की आलमारी में "हमारे पशु" की एक प्रति पड़ी थी, उसे ढूंढ निकाला और पढ़ने लगी ।

लीला ने तब तक दाना और भूसा निकाल कर नौकर को दे दिया था, जब कि पूरे आध घण्टे बाद सुरेखा ने पुस्तक से एक सूची उतारी और लीला को पुकार कर कहा, "इतना-इतना सामान गनेशी को दे दो ।"

लीला ने एक बार परचा पढ़ा, फिर दीवार की ओट में मुंह करके हंसने लगी ।

"हंसी क्यों ?" सुरेखा ने कुछ गुस्सा होकर पूछा, "कौन बात ग़लत है ? जरा बताओ न ।"

"यह सेर भर बिनौले खिला कर क्या गाय को मारोगी ?"

लीला ने किसी तरह हंसी बन्द कर उत्तर दिया —"गाय के सब थन सूज

जायंगे ।"

"जी हां, बस एक आप ही तो अक्लमन्द की दुम हैं । वह इतना बड़ा राइटर तो गधा ही है ।" सुरेखा ने तेजी से कहा और फिर झमक कर गनेशी को बुलाया और कहा—"पांच सेर भूसा, सेर भर दाल, सेर भर बिनौले ।"

नौकर ने अचकचा कर पूछा ।

"हाँ, हाँ सेर भर ! सुनाई नहीं देता क्या ।" सुरेखा का स्वर बहुत कड़ा हो गया था ।

लीला ने नौकर को आंख मारकर इशारा किया । वह सुनकर चुपका चला गया ।

लीला टेबिल साफ करने लगी । गिरीश के आने का समय जो हो गया था ।

इतने में नीचे से मिश्रानी ने पुकारा—"बहूजी ! आज बाबूजी को चाय के साथ क्या दोगी ? मठरी तो परसों ही खत्म हो गई थी ?"

"कल क्या दिया था ?" सुरेखा ने खीज कर पूछा ।

"कल तो जीजी ने ताज़े समोसे बना दिए थे ।"

"अब"--सुरेखा कुछ सोचकर बोली—"तुम चाय बनाओ । आज बिस्कुट रख देंगे ।" फिर बड़बड़ाई—"सारे घर की आदत खराब कर गई हैं महारानीजी ! किसी के गले से बाज़ार का मीठा नमकीन भी नहीं उतरता और ज़रा इन बच्चों को तो देखो कि सवेरे की रोटी तो खाई, पर बाज़ार से कुछ न लाया गया ।"

गिरीश आ गया । कपड़े उतारने पर जब चाय सामने आई, तो प्लेट में बिस्कुट और थोड़ा हलवा रखा देखा, बोला—"यह क्या लीला ? आज नई बात क्यों ?"

लीला जैसे शर्म से पानी-पानी हो गई । धीरे से बोली "भइया ! जीजी तो हैं नहीं, और मिश्रानी तो वही अपने समय से आई; सो मैंने जल्दी से हलवा ही कर लिया ।

गिरीश को मीठा नहीं भाता, न बिस्कुट ही । वह चुपचाप खाली चाय पीकर उठ गया । सुरेखा एक तो घण्टे भर तक गाय के खल-भूसे की खोज में अध्ययन करते-करते थक चुकी थी, उसपर गिरीश का सब छोड़कर उठ जाना ।—पूरी जलती कढ़ाई का बैंगन हो गई । बिना चाय पिए ही उठ पड़ी ।

"तो जीजी चली ही गई......."--गिरीश ने सोचा और चुपचाप पलंग पर उदास-मन लेट रहा ।

अब मिश्रानी की पूरी आफत आ गई । गिरीश चार शाक-तरकारियों के बिना टुकड़ा नहीं तोड़ता था । लक्ष्मी ने कभी सादी थाली परोस कर खिलानी नहीं जानी,

उसपर दही-बड़ा, अचार, चटनी अलग, मिश्रानी खाली फुलके सेंक देती थी। बहुत हुआ तो दो-एक सब्जी भी उतार देती। संध्या को भी दूध चढ़ाकर चौका छोड़ देती थी और लक्ष्मी स्वयं ही मीठा मिलाकर सबको पिलाती और बचा हुआ जमा देती थी।

अब सब काम मिश्रानी पर था। दो दिन में ही उसके हाथ-पैर फूलने लगे-सुरेखा को भी कम मुसीबत न थी, दम-दम पर नौकर कहता—"बहूजी आज यह नहीं है, आज वह नहीं है, धोबी का हिसाब जोड़ दो—और बनिये के सामान के पर्चे पर दस्तखत कर दो।"

हर दूसरे दिन मिश्रानी कहती—"बहूजी घी निबट गया...लकड़ी नहीं है।"

गिरीश ने अलग उसका नाक में दम कर रखा था। वह हमेशा का ही लापरवाह है। अपनी किसी चीज़ की सम्हाल नहीं कर पाता, अब रोज आफ़िस जाने के टाइम पर पुकार पड़ती—"लीला ! ज़रा मेरी कमीज़ में एक बटन तो लगाओ, और यह लो मेरा रुमाल कहाँ गया, सुरेखा ज़रा एक रुमाल तो निकाल दो और हत्तेरे की एक इलास्टिक ही ग़ायब है.....।"

सुरेखा मारे गुस्से के होंठ चबाकर कहती-"इतनी भी सम्हाल नहीं रख सकते ! तुम्हें आदमी किसने बनाया था......?"

तब गिरीश धीरे-से कहता—"क्या बतायें हमारी सम्हाल तो जीजी कर लेती थीं।"

और सुरेखा के आग जो एड़ी से लगती, तो चोटी पर जाकर बुझती—"तो फिर जीजी को ही घर में....। मुझे क्यों लाये थे....।"

उस दिन गिरीश जब आफ़िस चला गया, तब सुरेखा काग़ज़-कलम लेकर मीमू बानने बैठी। अब वह हमेशा का झगड़ा निपटा देगी; जिस मौसम में जो तरकारियां होती हैं, उन्हें इस हिसाब से बांटेगी कि कम-से-कम तीन दिन तक पहली सब्ज़ी न बन पाये। गनेशी को पुकार कर पूछा—"गनेशी इन दिनों क्या-क्या मिलता है बाज़ार में ?"

"जी"—कहकर गनेशी ने सोचा, "इन्हें इतना भी नहीं मालूम ?" फिर बोला 'आलू, गोभी, मटर, शलगम।"

"एक-एक करके बोलो जी—"

नौकर चुप हो गया—

पूरे तीन घण्टे में सुरेखा ने मीमू तैयार किया पाँच पृष्ठ रंगकर। उफ सिर में

दर्द होने लगा उसके। गनेशी ने स्वस्ति की सांस ली और नीचे भागा, किन्तु सुरेखा को अभी छुटकारा कहाँ। गाय के बच्चा होनेवाला है, ग्वाला कह रहा था; सो अभी 'पशु-चिकित्सा' आदि देखने थे। एस्प्रीन की एक टेबिलैट निगलकर वह फिर कुर्सी पर आ बैठी। अभी दो ही पृष्ठ पढ़े थे कि नीचे कि चिल्ल-पुकार ने उसका ध्यान भङ्ग कर दिया। गनेशी चीख-पुकार रहा था—"बहूजी ! लाली लौट आई !"

सुरेखा पुस्तक पटक कर नीचे उतरी। देखा गाय बुरी तरह डकरा रही थी, मछली-सी तड़प-तड़प कर पटखियाँ ले रही थी। सुरेखा को तो फ़िट पड़ जाने का सन्देह होने लगा अपने ऊपर-"राम करे मर जाय यह मोहना ! गया सो लौटा ही नहीं—!"

ग्वाला पास ही खड़ा था। बोला,—"बहूजी ! बुलाओ किसी को नहीं तो लाली बचती नहीं दीखती, पेट में ही उलटा हो गया है बच्चा !"

"क्या करूँ ?"—सुरेखा सोचने लगी।

"बहूजी ! रामचरन को बुला लूँ ?"

"हिश ! वह क्या करेगा ? ठहरो मैं डाक्टर चटरजी को फोन करती हूँ—"

बराबर में टेलीफोन इन्सपैक्टर रहते थे। सुरेखा ने वहीं से फोन किया। डाक्टर नहीं मिले अब बड़ी मुश्किल पड़ी।

ग्वाला रामचरन को बुला लाया।

रामचरन मुहल्ले में मवेशियों का डाक्टर था—वे पढ़ा-लिखा; उसका तो यह पुश्तैनी पेशा था। उसके खान्दान का हरएक बाप अपने बेटे को इसे सिखा जाता था और आशीर्वाद के रूप में हाथ शफ़ा दे जाता था। सो रामचरन के हाथ में भी शफ़ा थी। घरेलू दवाइयाँ जानता था, अक्ल से नहीं विश्वास से काम लेता था। देख-भाल कर रामचरन ने कहा—"गरम चीज़ देनी होगी, गैया शीत में आ गई है। थोड़ा गुड़ मँगाओ, उसे पकाकर........।"

"गुड़-घी ! इससे तो ब्रांडी ही ठीक रहेगी, गर्मी ही तो पहुंचानी है न, सो ब्रांडी फौरन पहुंचाएगी--और फिर उसके नशे में इसका दर्द भी हल्का पड़ जाएगा.....।"

बात-की-बात में एक बोतल ब्रांडी भी आ गई। और आधी बोतल बलात् लाली के गले से उतार दी गई....! उफ़....! लाली ने दस मिनट में सारा घर सिर पर उठा लिया। ग्वाले और रामचरन की आफत आ गई। सुरेखा का जी कह रहा था कि घर छोड़कर भाग जाय और इस मोहना और जीजी को.......! राम-राम करके लाली ने बछड़ा दिया। कई दिन बाद स्वस्थ हुई। ब्रांडी ने बुरी दशा जो कर दी

थी ।

आज मिश्रानी ने जवाब दे दिया । "यह रोग मेरे बस का नहीं है, आठ रुपये में इतना काम ! सारा दिन यहां खप जाता है ।"

गिरीश ने नाराज़ होकर कहा—"तो जाओ न ! हमें क्या नौकर नहीं मिलेंगे ?"

सुरेखा भी मिश्रानी से खुश नहीं थी । इतना सामान आता था घर में, फिर भी हर समय तङ्गी बनी रहती थी । उसने भी कह दिया— "जाओ, तुम नहीं होगी, तो क्या हमें खाना न मिलेगा ?"

मिश्रानी कहाँ की भली थी ! जब नौकरी ही छोड़नी, तब दबे क्यों ? बोली— "मिला बस खाना ! दाल में नमक छोड़ना तो आता नहीं ।"

गज़ब ! सुरेखा तिलमिला गई ।

गिरीश ने कोट पहनते-पहनते कहा--"अच्छा तो सुरेखा आज शाम को होटल में खा लेंगे । कल तक कोई मिसर मिल ही जायगा, क्या ब्रताएँ लीला भी कैसे समय बीमार पड़ी है ।"

सुरेखा अब सह नहीं पाई । भरे हुए स्वर में बोली—"होटल-वोटल की बात गलत है । चार आदमियों का खाना ही क्या ? सब बन जायगा—"

जब गिरीश आफिस चला गया, तब सुरेखा सागूदाना पकाने बैठी । डाक्टर ने लीला को बताया था । जाने कैसा सागूदाना था कि दूध में पड़ते ही जम गया । चमचा मारते-मारते सुरेखा तङ्ग आ गई; पर उसमें से पड़ी गुठलियें न खुलीं, न खुलीं । गरम-गरम कई छींटे सुरेखा के मुँह पर उचट कर आ पड़े । चीखकर नौकर से बोली—"गधे ! कैसा सागूदाना लाया है ? नकली है एक दम !"

गनेशी सिटपटा कर बोला—"जी ! वही तो है, जो परसों छोटी बीबी ने मुन्ने के लिए पकाया था—"

सुरेखा के तब धीरे से होंठ हिले—"पुराना हो गया शायद इसी से—"

लीला ने जब सागूदाना देखा, तो हँसी से उसका बुरा हाल हो गया । जैसे-तैसे दो चम्मच खाए, फिर कटोरा पलंग के नीचे सरका कर लेट गई ।

सुरेखा दोपहर से ही रसोईघर की शोभा बढ़ा रही थी, पाक-शिक्षा, पाक-चन्द्रिका, गृहणी-शिक्षा, की जिल्दें क्रम से खुली हुई थीं—और हाथ में तराजू-बाट । और सब सामान तोल कर हिसाब से वह ऐसा भोजन तैयार करेगी कि खानेवाले भी उँगलियाँ चाटें । सेर भर आलू में दो तोला नमक, सवा तोला धनिया, एक तोला हल्दी और. ......पर हवा के झोंके से पृष्ठ हिल गये । सुरेखा तराजू रख कर पुस्तक फिर

सम्हालती ।

तीन बजे तक उसने सब तरकारियों के मसाले और समोचे का सामान छांट कर रख लिया । साढ़े तीन बजे स्टोव और अँगीठी सुलगा कर वह रसोई बनाने लगी । बड़ी मुसीबत थी । प्याज़ काटने से आँखें बीरबहूटी बन गई थीं; मसाला अलग हाथों में जलन पैदा कर रहा था, ऐनक की कमानी स्टोव की तेज़ी से गरम हो उठी तो उसे उतारते समय हाथ की चिकनाई से फिसल कर कढ़ाही में जा पढ़ी—! उफ़ बैठे-बिठाये सोलह रुपये का यह नुकसान हो गया ।

सुरेखा ने अफ़सोस से दोनों हाथ मले । पर अब हो ही क्या सकता था ।

साड़ी में हल्दी के धब्बों की तो कुछ पूछो मत—इतनी गन्दी धोती उसने अपनी 'लग्न' के दिनों में भी न पहनी थी ।

दस समोसे बनाए और पूरा डेढ़ पाव घी फुक गया ! जाने जीजी कैसे रोज़ बनाती थी, ऐसे तो दिवाला निकल जाय ।

छः बजे तक सुरेखा ने कई तरकारियाँ बना डालीं । बस सूखे आलू ज़रा जल गये थे; मटर में थोड़ा शोरबा अधिक हो गया था; परवल जाने बासी थे क्या, कि दो घण्टे भूनने पर भी गीले ही रह गये थे । समोसे भी ठण्डे होकर जाने क्यों ऐंठ से गये थे । बात यह थी कि मोयन डालना भूल गई थी । क्या-क्या याद रखे सुरेखा ! दर्द से माथा फटा जा रहा था सो अलग; आज गिरीश अभी तक आफ़िस से न लौटा था । चाय रखी-रखी काली पड़ गई, सुरेखा की भुनभुनाहट से रसोई मुखरित हो रही थी । गनेशी और दूसरे नौकरों की टाँगें बाज़ार जाते-जाते तोबा बोल रही थीं ।

साढ़े छः बजे गिरीश आया । चाय और बिस्कुट भेजकर सुरेखा समोसे बनाने बैठी ।

गिरीश ने कहा—"क्या होगा समोसों का, अब खाना ही खा लूँगा ।" किन्तु वह मानी नहीं । बानगी जो दिखानी थी उसे !

दो मिनट बाद उसने गिरीश की तश्तरी में दो समोसे रख दिये ।

गिरीश ने चाय का एक सिप लेकर समोसे का टुकड़ा तोड़ा ही था कि "ओ !" करके वह कुर्सी से उछल पड़ा, फिर थू-थू करता बाहर आ गया ।

क्यों क्या हुआ ?" सुरेखा ने उसे आंगन में नाचते हुए देखकर पूछा ।

"क्या डाल दिया समोसे में ? मालूम होता है जैसे टारटैरिक एसिड में पकाए हैं ।"

"तुम भी खूब हो—" सुरेखा चिटख पड़ी—"पहले खाना सीख लो ! मैं तो खटाई से वैसे ही दूर भागती हूं, कसम खाने को तो डाली नहीं ।"

गिरीश चुपचाप कुल्ला करके कमरे में चला गया ।

इतनी सरदर्दी का यह पुरस्कार ! सुरेखा के तन-बदन में आग लग गई । भुनभुनाती हुई कमरे में आंचल लपेट कर पूरियाँ उतारने लगी । कमबख्त आधी से अधिक थाल में ही चिपट गई थी, जो छूटी उनमें से भी मुश्किल से दो-चार फूली । खैर बन गईं किसी तरह ।

सुरेखा ने थाल परोसकर नौकर के हाथ भेजा और कढ़ाई चूल्हे पर ही छोड़कर कमरे में पलंग पर आ लेटी । इतनी मुसीबत कभी न उठाई थी उसने । हाथ में कई जगह छाले पड़ गये थे, गरम घी आ पड़ा था; सो जलन हो रही थी । जब लेटा न गया, तो उठकर दूसरे कमरे में चली, जहाँ गिरीश भोजन करने बैठा था.....कि अकस्मात गिरीश ने थाल झन्न से नीचे पटक दिया । फूल का थाल गिर कर खील-खील हो गया । कटोरियाँ आंगन में जा पड़ीं......

"सब चीजों में खटाई भरी पड़ी है । पूरियाँ जल गईं, सो अलग ।" गिरीश ने आँगन में आकर कहा ।

सुरेखा और गिरीश में तर्क-युद्ध छिड़ गया । वह कहता था कि खटाई भरी पड़ी है, और वह कहती थी कि खटाई मैंने आँख से भी नहीं देखी आज, डालने की बात रही अलग । लीला की ज़रा आँख लग गई थी । गर्जन-तर्जन सुनकर लीला जाग पड़ी, फिर भाई-भावज की गरम-गरम बात सुनने लगी ।

देर तक सुनने के बाद उसने पुकार कर कहा—"भाभी ! तुमने क्या मसालदानी में जो डिबिया थी, उसमें से डली निकाली थी ?"

"हाँ, नमक थोड़ा था, सो कूट कर मिला ली थी......."

"अरे !" —लीला ने कहा--"वह तो टाटरी थी ।"

रात को सुरेखा को ज्वर चढ़ आया ।

सवेरे गिरीश ने गनेशी से कहा—"जा डाक्टर चटर्जी से सब हाल कहकर दवा ले आ और सुन ले यह अर्जी श्यामसुन्दर बाबू को दे आ, दो दिन की छुट्टी ली है मैंने.......।

और दोपहर की गाड़ी से गिरीश जीजी को लिवाने चला—

○

: १४ :

ज्योति

विधाता ने पदार्थ को बनाया, उसमें जड़ता की प्रतिष्ठा की और फिर विश्व में क्रीड़ा करने के लिए छोड़ दिया। पदार्थ ने पर्वत चिने और उखाड़ कर फैंक दिये, सरितायें गढ़ीं, उन्हें पानी से भरा और फूंक मार कर सुखा दिया; पहाड़ों क़ी चोटियों पर भट्ठियाँ दहकाईं और ताप-तूप कर उन्हें ठण्डा कर दिया। पदार्थ ने यह खेल करोड़ों वर्ष खेले। खिलौनों को बार-बार बनाया और बार-बार तोड़ा। वही खेल निरंतर खेलते-खेलते उसका मन ऊबा, वह हाथ पर हाथ धर कर बैठ गया, पर उससे बैठा भी न रहा गया। उसके भीतर एक अस्पष्ट-व्यथा जगी। लगा कि उसमें हृदय उत्पन्न हो गया है। उसने अपने को संभालने की बहुत चेष्टा की। विश्व में सतत-क्रीड़ा में प्रवृत्त रहने के पिता के आदेश का स्मरण किया। अपने को कस कर रखना चाहा, पर अन्तर का आवेग अन्तर में समा न सका। वह उसके भार से फटने लगा। उसकी अस्थियां लरजने और पेशियां चटकने लगीं। वह पीड़ा से विह्वल हो गया, उसकी देह कांपने लगी और उसकी वाणी विधाता की स्तुति में फूट निकली। उसने अपने अहंकार का अर्ध्य देकर अपना मस्तक उनके सम्मुख टेक दिया।

वह गा उठा 'हे परम पिता, तुम्हारी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। मैं कोटि-कोटि वर्षों तक उसका पालन करता रहा हूँ, परन्तु हे देवता, मैं अब इस क्रीड़ा के भार से दब गया हूं। मुझे पता नहीं क्या हो गया है। मेरी दृष्टि मन्द पड़ गई है। मेरे सम्मुख का चिरस्पष्ट मार्ग आज तिरोहित होता जा रहा है। हे देव ! मैं मूढ़ हूँ, मैं आपकी शरण हूँ। आप ही मेरी सहायता कर सकते हैं। हे कल्याणकर ! आप मुझे आलोक दीजिए। बताइये मैं आपकी आज्ञा का पालन किस प्रकार करूँ ?'

ऐसा कह अपने को परम पिता के हाथ में नितान्त सौंप उस पदार्थ ने अपनी निरीह चातक दृष्टि आकाश की ओर उठा दी और अजस्त्र अश्रुधारा नयनों से बह चलीं।

अपने हृदय के रक्त को आँसू बना-बनाकर परम-पिता के चरणों में अर्ध्य देते उसे कितने ही युग बीत गए, पर उसकी व्यथा में कोई अन्तर नहीं पड़ा और न कोई अन्तर पड़ा उसकी तपस्या में ।

एक दिन शुभ मुहूर्त में एकाएक विधाता का आसन डोला । उनका ध्यान टूटा और उन्होंने विश्व पर दूर-दूर तक अपनी लीला-मयी दृष्टि फैंकी, वे मुस्काये, तभी उनकी दृष्टि अपनी ओर टकटकी लगाये पुत्र पदार्थ पर पड़ी । वे उत्सुक हो गये । पर पदार्थ की कठिनाई समझते उन्हें समय न लगा ।

वे खिलखिला कर हँस पड़े । बोले, "कहो पदार्थ कैसे हो ? तुम्हें तो बहुत कालांतर के पश्चात् देखा है, अच्छा बेटा वर मांगो ।"

पदार्थ ने हाथ जोड़कर अपना कष्ट निवेदन किया । बोला, "हे लीलापति, मेरी बुद्धि नहीं कि आपसे कुछ मांगू, जिससे मेरी पीड़ा को सांत्वना मिले और प्रभु की लीला का विकास हो, वही हे स्वामी, आप मुझे दीजिए ।"

विधाता के नयन स्नेह से भर आए । बोले, "पदार्थ, तुमने एकांत तपस्या से अपने अन्तर की जड़ता को पिघला लिया है । मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, लो, मैं तुम्हें एक बहन देता हूं, यह तुम्हें लीला में सहायता देगी ।"

और तब विधाता ने अपने शरीर में से ज्योति का सिरजन कर पदार्थ की ओर बढ़ा दिया और कहा, "तुम्हारी इस बहन का नाम ज्योति है । तुम देखते हो कि इसके शरीर नहीं है, यह तुमसे छोटी है इसे बड़े यत्न से रखना ।"

पदार्थ ने मस्तक टेक कर विधाता को प्रणाम किया और ज्योति को दुलराता लीला के मंच पर आ गया ।

पदार्थ और ज्योति परस्पर खेलते और खेल-खेल में झगड़ पड़ते । पदार्थ ज्योति को पकड़ने के लिए हाथ पसारता; पर असफलता पर झुँझला उठता । ज्योति कुछ भी हो उससे छोटी ही है, वह उसकी अवज्ञा करती है । वह चाहता है कि खिलौना भूमि पर रहे, पर ज्योति है कि उसे आकाश में उड़ाना चाहती है । वह उसका यह अतिचार नहीं सहन करेगा । वह दांत पीसता और भिनभिना उठता ।

ज्योति इधर से उधर छटक जाती, उसके हाथ न आती । वह हाथ बगल में मारता तो वह उसके पीछे जा पहुंचती और उसके सिर पर हल्की सी चपत लगाकर खिलखिला पड़ती ।

"क्यों पदारथ भैया ।"

और पदार्थ झुँझला उठता । आगे-पीछे, दांये-बांये हाथ चलाता पर ज्योति पकड़ाई न देती । वह दांत पीसता, ओंठ काटता । इस शैतान बहन के साथ से तो वह अकेला ही भला था । विधाता ने यह क्या बला उसके सिर मँढ़ दी । पर वे तो परमपिता हैं, अयोग्य तो उनके हाथ से हो ही नहीं सकता और तब वह घुटनों में सिर दे हतोत्साह होकर बैठ जाता ।

ज्योति हँसती-हँसती एकदम चुप हो जाती । उसके निकट आती । ध्यान से उसकी मुद्रा को निहारती, एक पग आगे बढ़ती और फिर एकाएक द्रवित हो उठती । उसके बालों में उँगलियां चलाती हुई कहती, "क्यों पदार्थ भैया, तुम रूठ गये ? मुझसे क्रुद्ध हो गये हो क्या ?"

पदार्थ भैया का मन तत्काल पुलक उठता । उसे खींचकर गोद में लिटा लेते, कहते, "दुत पगली, मैं तुझसे क्रुद्ध क्यों होने लगा । सिर में कुछ पीड़ा अनुभव होने लगी थी इसीसे.........।"

"देखा भैया, वही हुआ न ! मैं कहती हूँ कि मिट्टी में इस तरह रम कर नहीं रहना चाहिए । संसार का चक्र तो चलता ही रहता है । चलो वन में सबसे ऊँचे वृक्ष के ऊपर चढ़कर बैठें । वहाँ शीतल वायु के दो झोंके लगे कि सिर की पीड़ा गई ।"

तब वे दोनों हाथ पकड़ वन की दिशा में चल देते । ज्योति हाथ छुड़ाकर खिलखिलाती आगे भाग जाती । बस मेरे पीछे चले आओ, हां, लपक के ! "अरे तुम तो बूढ़े हो चले ।" और तब पदार्थ भी अपनी विशाल काया की असुविधा की चिंता तज उसके पीछे भाग निकलता ।

लीलामय ऊपर से यह देखते और इस आत्मदर्शन पर प्रसन्न होते ।

युगों के खेल में, अनेकों परीक्षणों के पश्चात् पदार्थ ने एक विचित्र प्रकार का खिलौना बनाने की विधि का आविष्कार कर लिया । इस नवीन खिलौने में विशेषता यह थी कि यह स्वयं इस खेल को समझने का ढोंग रचने लगा था । इसकी नाना चेष्टाओं से पदार्थ और ज्योति के पेट में हँसते-हँसते बल पड़ जाते और विधाता भी मुस्का-मुस्का कर निरन्तर उनपर आशीर्वादों की वर्षा करते रहते थे । यह नवीन खिलौना अपने को मनुष्य के नाम से पुकारता था । पदार्थ, ज्योति और विधाता को यह इतना भाया कि उन्होंने अन्य प्रकार के खिलौनों के निर्माण में कमी कर दी । वे समस्त शक्ति इसी खिलौने पर व्यय करने लगे । अन्य खिलौने जो बनते रहे वे विशेषतया इसी दृष्टिकोण से कि मनुष्य को ही अधिक पूर्णतया सजाने के काम में

आयें।

x x x

पिछले बहुत दिनों से पदार्थ यह खिलौने बनाता जाता था और बिगाड़ता जाता था। ज्योति खेल में भाग लेना चाहती थी; पर लगता था कि वह सकुचा रही है। वह कभी किसी खिलौने की नाक संवार देती, कभी किसी का हृदय छू देती; किसीकी भुजा पर फूंक मार देती और इससे वे खिलौने ऐसे चमक उठते कि टूटने के पश्चात् भी पदार्थ को उनकी याद बहुत दिनों तक आती रहती। पदार्थ को अनुभव हो रहा था कि ज्योति खेल में पूरा भाग नहीं ले रही है, खेल में अपना हृदय नहीं डाल रही है।

उसने ज्योति की ओर अनुरोधपूर्ण दृष्टि उठाई। ज्योति ने उसकी दृष्टि का उत्तर दृष्टि से ही दिया, वह कह रही थी नहीं, मैं नहीं खेलूंगी।

"क्यों !" पदार्थ ने पूछा।

"खेल तो रही हूं, पदार्थ भैया !"

"ज्योति, झूठ क्यों बोलती हो ? मैं जानता हूं कि तुम्हारा मन खेल में नहीं है, तुम किसी भी खिलौने में तो रुचि नहीं लेती।"

"खेल तो रही हूँ।" ज्योति ने जोर से कहा, "नहीं खिलाना चाहते तो वैसा कह दो।"

ज्योति, तुम कैसी बातें करती हो, साथ खेलने के ही लिए तो मैं तुम्हें विधाता से माँग कर लाया हूँ। तुम्हारे लिए मैंने युगों तपस्या की है। यदि तुम्हें खिलाना न होता तो मैं इतना कष्ट क्यों उठाता। आओ खेलो, जी लगा के खेलो।"

"पदार्थ भैया, तुम कहते तो हो, पर अपने हृदय से पूछ लो जब कभी किसी खिलौने के प्रति मैंने ममता प्रदर्शित की है तुम उसे सहन नहीं कर सके हो।"

"ज्योति !"

"हां, मैं असत्य तो नहीं कह रही हूँ, तुमने कहा था देखो मैं सिद्धार्थ बनाता हूं। मैंने उसमें रुचि ली थी। उसे संवार कर बुद्ध बना दिया, मैं जानती हूं कि तुम्हें मेरा वह सँवारना भाया नहीं और जब मैंने ईसा के हृदय को अपनी उँगलियों से छुवा तब भी तुम असन्तुष्ट हो गये। मुझसे तो तुमने कुछ नहीं कहा, पर उसे निर्ममता से टिकटिकी पर जड़ दिया। भैया, मैं अब किसी खिलौने के प्रति ममता नहीं दिखाऊँगी, मैं जो किसी-किसी को थोड़ा बहुत छू देती हूँ, उसीसे सन्तुष्ट हूँ। तुम

बनाते जाओ, बिगाड़ते जाओ।"

पर पदार्थ का मन न भरा। जिसमें प्रतियोगिता न हो वह खेल कैसा? वह बोला—"ज्योति, मुझे तुम्हारा आरोप स्वीकार तो नहीं करना चाहिए, क्योंकि खिलौने तो सब टूटने को ही बनते हैं, पर मैं झगड़ा मिटाना चाहता हूँ इसलिए मान लेता हूँ कि मैं ही खेल में न्याय से डिगा हूँ। अच्छा आओ खेलो, अब ऐसा न होगा। लो, खिलौने बनाने में मेरी सहायता करो।"

ज्योति पूरे हृदय से पुनः लीला में सम्मिलित हो गई।

उसने सम्मुख बिखरे मनुष्यों के समूह को देखा। उसके मन में फिर दुविधा उत्पन्न हो गई। बोली, "पदार्थ भैया, मैं तुम्हारे सब खिलौनों में रुचि लेना नहीं चाहती। तुम जो उचित समझो वह खिलौना मुझे दे दो मैं उसे मन भर कर सजाऊँ सँवारूंगी, पर पहले कहे देती हूँ कि उसे तुम मुझसे मांग न सकोगे।"

पदार्थ भैया का हृदय पिघल गया। बोले, "मैं क्या दूँगा, तू छांट ले जो तेरी समझ में आये ले ले। मैं तो अनगिनती नित्य बनाता-बिगाड़ता हूं, एक दो से मेरे यहां कमी नहीं आजायेगी।

ज्योति ने अपनी दृष्टि उस समूह में दौड़ाई। उसने देखा कि करोड़ों मनुष्य अरबों प्रकार की उखाड़-पछाड़ में लगे हुए हैं। एक धमा चौकड़ी मची हुई है। एकाएक ज्योति की दृष्टि मोहनदास करमचन्द गांधी नामक एक भारतीय जन पर स्थित हो गई। उस दृष्टि के कुछ क्षण गाँधी पर ठहरते ही पदार्थ के हृदय में खलबली मच गई। उसने अपनी दृष्टि उस ओर उठा दी। पाया कि ज्योति की पसन्द कोई विशेष नहीं है और वह पुनः अपनी लीला में व्यस्त हो गया। ज्योति ने अपनी प्रकाशवान् उँगलियाँ गांधी की ओर बढ़ानी प्रारम्भ कीं, वे जादू की उँगलियाँ ज्यों-ज्यों उसके निकट आती गईं गांधी में एक दिव्यालोक का प्रस्फुटन होता गया।

पदार्थ भैया ने नरेशों और महंतों के ऊपर उड़ती हुई दृष्टि से दक्षिण-अफ्रीका को देखा। उनकी दृष्टि गांधी पर अटक गई, वे कई क्षण उन्हें निहारते रहे, मन ही मन मुस्काये।

ज्योति वास्तव में प्रसन्न है, शृंगार करने में वह वास्तव में कुशल है, नारी जो ठहरी। गांधी को सचमुच अच्छा सजाया है। पदार्थ ने अनुभव किया कि गांधी में जितने जड़त्व की स्थापना उसने की थी उतना वर्तमान नहीं है।

उसने देखा कि गांधी के अधर हिल रहे हैं। उसने सुना—सत्याग्रह,

सत्याग्रह !

"यह क्या है ? पदार्थ ने अपने विशाल कारखाने के कोने-कोने को टटोल डाला । खंडित अधबने खिलौने और विविध औजार जहां पड़े थे उन शताब्दियों की धूलि चढ़ी अल्मारियों को खोज डाला । नहीं, सत्याग्रह नाम की कोई वस्तु वहाँ नहीं है । यह सत्याग्रह क्या है ? यह पदार्थ कुल का नहीं है । निःसन्देह यह उसके क्षेत्र के बाहर का आयुध है, तो क्या ज्योति ने यह आयुध गांधी को दिया है ? कैसी पगली है वह ! खिलौने के हाथ में हथियार । यदि कहीं !"

तब पदार्थ ने अपनी भौंहे हिलाई, उसके खिलौनों में खलबली मच गई । पर गांधी पर इसका कोई प्रमाण लक्षित न हुआ, संभव है गांधी ने उसकी दृष्टि देखी न हो । उसने गांधी की ओर अपनी भौंहे टेढ़ी कीं, पर गांधी ने अविश्वसनीय किया । उसने पदार्थ की दृष्टि मिला दी और स्थिर खड़ा हो गया । पदार्थ काँप उठा, उसकी अवहेलना !

क्या करना चाहती है यह ज्योति ?

पर गांधी को ज्योति ने कैसा सजाया है, उसका सौन्दर्य !

पदार्थ भैया फिर अपने कार्य में लग गये । विधाता अकेले जिसके दर्शक हैं और असंख्य जिसके पात्र हैं ऐसे नाटक के सूत्रधार पदार्थ ने अपना ध्यान पुनः रंग-मंच की अन्य आवश्यकताओं की ओर फेर दिया ।

उसकी दृष्टि समस्त-विश्व का भ्रमण कर जब भारतवर्ष की ओर लौटी तो एकाएक ठिठक गई । उसने इस व्यक्ति को पहले कहीं देखा है । वह अब पहले से अधिक सुन्दर है, उसका तेज बढ़ गया है । उसकी मुस्कान में एक विचित्र आकर्षण है । दृष्टि में एक शान्ति है, अनोखा सौन्दर्य है । नहीं नहीं, उसने उसे इतना सुन्दर नहीं बनाया था । यह तो वह खिलौना है जिसे ज्योति ने उससे ले लिया था ।

पदार्थ भैया के मन में उठा, पर इतना सौन्दर्य केवल ज्योति के शृंगार से नहीं आ सकता, यह असंभव है । यह खिलौना अवश्य पहले से ही सुन्दर रहा होगा । यह माना कि ज्योति शृंगार करना अच्छा जानती है, पर इतना शृंगार !

ज्योति देखने में ही इतनी सीधी-सादी लगती है । भोलापन चेहरे से टपका पड़ता है, पर वैसे है बड़ी चालाक !

पर पदार्थ भैया बोले कुछ नहीं, उन्हें लगने लगा कि ज्योति ने उन्हें ठग लिया है । मैं जो अच्छे खिलौने बनाता हूं उसी पर वह उँगली रख देती है । कहती है मुझे

लाखों नहीं दो चार चाहिए। पर दो चार के नाम पर वह सबसे अच्छे छांट लेती है।

मैं भी कैसा मूर्ख हूं, ज़ो छांट लेने देता हूँ, भविष्य में ऐसा नहीं होगा। इस बार मैं उसे सबसे भदा खिलौना दूँगा, देखूंगा, वह उसे कैसे सजाती है। चतुराई स्वयं प्रारम्भ करती है और फिर कहती है कि तुम रूंगटाई करते हो।

पदार्थ भैया ज्योति की ओर से सतर्क हो गये। उन्होंने अपने खिलौनों पर शासन दृष्टि का कठोर संकेत फैलाया। नियम यह है कि जब पदार्थ का संकेत पाते थे तो मनुष्य जैसे उन्मत्त हो जाते थे। उनके सम्मुख नत-मस्तक होकर स्वामी के मनोरंजक कार्यों में प्रवृत्त हो जाते थे। वे चोरियां करते, डाके डालते और अपनी ही जाति के रक्त से होली खेलने लगते। पदार्थ भैया ने देखा कि भारत में सब व्यक्तियों ने उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया है। एक स्थान की ओर मुख किये पर्याप्त लोग खड़े हैं। खड़े ही नहीं, वे उनकी ओर पीठ फेरकर उस दिशा में बढ़ भी रहे हैं। उन्होंने भौंह रूपी कमान को और खींचा। कुछ व्यक्ति लौट पड़े, पर अधिक थे जो उनकी ओर पीठ किये ही चलते रहे। उनकी भृकुटी बंकिमा में और वृद्धि हुई, पर ,इन मनुष्यों पर उसका प्रभाव लक्षित नहीं हुआ।

क्रोध को दबाकर उनमें उत्सुकता जागी, यह कौन है जो उनके आज्ञाकारी खिलौनों को उनसे विमुख कर उनकी आज्ञा की अवहेलना करवा रहा है।

पदार्थ भैया ने दृष्टि को व्यक्तियों के उस केन्द्र की ओर उठाया, पाया कि बीच में एक शैया है और उसके ऊपर लेटा है वही व्यक्ति, वही गाँधी-क्षीणकाय ! उसने उपवास किया हुआ है। पदार्थ को ठुकरा कर उसने इन पदार्थ के पुतलों का प्रेम प्राप्त कर लिया है। वह उसके साम्राज्य में विद्रोह का स्त्रष्टा है, ज्योति.........।

और पदार्थ भैया ने अवलोका कि गाँधी अब पहले से भी सौन्दर्यवान् हो गया है। उसका सौन्दर्य अब उसके हृदय के निकट पहुंच गया।

नहीं ! एक खिलौना उनका है। वह विद्रोह नहीं हैं। अच्छा, सुन्दर खिलौना है। यदि उनकी अन्य कृतियाँ एक सौन्दर्यवान् कृति की ओर आकृष्ट हुई तो यह उसके कला-कौशल को अर्ध्य है, यह उसकी कला की पराकाष्ठा है और पदार्थ भैया अपनी इस कलाकृति पर मोहित हो गये। यह उनकी है, उनकी ही है।

ज्योति को खिलौना चाहिए। मैं कह दूँगा गांधी को तज कर और जिसे चाहे ले ले। मैं निःसंदेह अब अच्छे खिलौने बनाने लगा हूँ।

ज्योति को अब मैं कुरूप खिलौना छाँट कर नहीं दूंगा। कह दूंगा जो तेरे जी में आये ले ले। जितने चाहे ले ले, जी भर कर उनका शृंगार कर ले।

वे पदार्थ भैया तब गाँधी के प्रति पुलकित हो गये। उन्होंने अपनी दक्षिण भृकुटी का एक रोम हिलाया और तब जो व्यक्ति गांधी की ओर पीठ फेर कर जा रहे थे, वे रुपयों की थैलियां ले लेकर उसकी ओर दौड़ पड़े। उन्होंने अपना विश्राम उसे समर्पित कर दिया, अपना मस्तक उसके चरणों पर टेक दिया, पदार्थ भैया संतोष की मुस्कान मुस्काये।

ज्योति ने पदार्थ भैया की ओर निहारा। गांधी के प्रति इनकी इतनी ममता क्यों? उसे जैसा मैं चाहती हूं वैसा क्यों नहीं बनने देते। मैं उसकी जड़ता का हरण कर उसे व्योम-बिहारी बनाना चाहती हूँ और इन्होंने उसके पैरों से सोने का भार बांधना प्रारम्भ कर दिया है, जब मैंने उसके शृंगार पर इतना परिश्रम कर, लिया है तब यह उसे मुझसे छीनना चाहते हैं। इन्होंने रूँगटाई प्रारम्भ कर दी है।

बोली, "पदार्थ भैया, बस कीजिये। गांधी को मैंने सँवारा है, आप उसे हाथ न लगाइये। मैंने आपसे पहले ही कह दिया था कि मैं उसे आपको न लौटाऊँगी।"

पदार्थ भैया के मन में उठा कि ज्योति से स्पष्ट कह दे कि शृंगार करने से क्या होता है। बनाया तो मैंने है, वह मेरा है।

पर उन्होंने अपने ऊपर संयम किया। बोले, "ज्योति घबराओ नहीं, मैं गाँधी को तुमसे नहीं लूँगा। तुम्हारा शृंगार मुझे भाया, इसीसे। सचमुच तुम शृंगार की कवियित्री हो।"

ज्योति ने सुना और अविश्वस्त दृष्टि से भैया की ओर देखा। पदार्थ भैया में उस दृष्टि का सामना करने का साहस न हुआ, वे अपने खिलौनों की क्रीड़ा देखने लगे।

ज्योति ने अपने मृदु हाथों से पदार्थ की पंक को गांधी से दूर हटा दिया।

गांधी ने कहा, "पदार्थ की प्रभुता स्वीकार नहीं करता। वह तो ज्योति का वाहन मात्र है, मैं सत्य के पीछे हूँ और अपनी अन्तर्ज्योति की आज्ञा मानता हूं।"

पदार्थ भैया ने सुना, अधरों को दांत से दबा लिया। ऐसा सौन्दर्य और यह शोखी! ऐसे प्यारे खिलौनों पर ज्योति का अधिकार! नहीं, कदापि नहीं।

ज्योति ने कहा, "पदार्थ भैया, आप मेरे खिलौने पर अपनी लोलुप-दृष्टि न लगाइये। मैं उसे अब आपके की कक्ष में दैवी आलोक से मण्डित करती हूं!" फिर

हँसकर बोली, "देखिये इस बार आप रूँगटाई न कीजियेगा ।"

पदार्थ ने कहा, "मुझ पर विश्वास रखो ज्योति ! विधाता ने तुमको मेरी रक्षा में दिया है, मैं तुम्हारे साथ अन्याय न करूँगा ।"

और तब बापू ने अपना अन्तिम उपवास आरम्भ किया ।

ज्योति का चेहरा खिल उठा । देवताओं के आसन हिल गये । पदार्थ भैया अपने मन के उपर आसन मारकर बैठने की चेष्टा करने लगे ।

एकाएक उन्होंने पाया कि ज्योति ताली बजाकर नाच उठी है । उसकी दृष्टि एकटक गांधी की ओर है । पदार्थ भैया ने देखा कि गांधी उनकी सीमा से ऊँचा उठ जानेवाला है । कितना सुन्दर हो गया है इस समय वह !

वह ज्योति को दिये हुए आश्वासन भूल गया, विधाता के दिये हुए आदेश भूल गया, वह अपने आपको मोह में बिल्कुल भूल गया । ज्योति द्वारा शृंगारित गांधी के सौन्दर्य को निरख कर वह पागल हो गया । उसने अपने दोनों हाथ गांधी को झपट लेने को बढ़ा दिये ।

पर ज्योति पदार्थ भैया के मन की बात समझ रही थी और पहले से तैयार थी । उसने लपक कर गांधी को गोद में छिपा लिया ।

पदार्थ भैया ने अपने को खो दिया । वे चीख उठे, "ज्योति, छोड़ दो इसे, यह मेर खिलौना है ।" "पर भैया आपने तो.........।" ज्योति ने विनय की, "मैंने, तो गांधी तुम्हें खेलने को दिया था । उसे मैंने बनाया है, वह मेरा है, मैं मांगता हूं । तुम मुझे लौटा दो, मैं अब उसे तुम्हें नहीं देना चाहता ।"

"पदार्थ भैया, तुम बहुत अच्छे हो । देखो, मैंने उसकी शृंगार करने में कितना परिश्रम किया है ।"

"पर तुम उससे खेली भी तो हो, लाओ अब मुझे दे दो ।"

"भैया, यह अन्याय है ।"

"चुप रहो, मैं कहता हूँ गांधी को छोड़ दो ।"

"भैया !"

"गांधी को छोड़ दो ।" उन्होंने आँखें निकालीं ।

"मैं नहीं छोडूंगी ।"

"नहीं छोड़ेगी ?"

"नहीं ।"

"फिर रोयेगी, देखता हूँ कैसे वह तेरा है ।"

और तब पदार्थ ने दहकती लोह-शलाकाओं के समान अपनी तीन लम्बी उँगलियाँ गांधी के शरीर की ओर बढ़ा दीं । ज्योति ने गांधी को बचाने की बहुत चेष्टा की पर उसकी अशरीरी सीमा थी । पदार्थ की वे घातक उँगलियाँ गांधी के वक्षस्थल और उदर से छू गईं । पाले से जैसे कमल मुरझा जाता है उसी भाँति गांधी का शरीर उनके स्पर्श से झुलस उठा ।

ज्योति ने चीखकर गांधी की मिट्टी को अंक से गिरा दिया ।

"पदार्थ भैया, तुमने यह क्या किया ?"

पदार्थ ने सुना नहीं, वह गांधी के शरीर की ओर झपट पड़ा । पर उस शरीर में अब वह सौन्दर्य न था, वह तेज़ तिरोहित हो चुका था, वह पागल हो उठा । अपनी उँगलियों को तोड़ता हुआ चीख कर रो उठा ।

ज्योति निरन्तर ऊपर की ओर निरख रही थी उसी भाँति जैसे बालक आकाश की ओर चढ़ते हाथ से छूटे गुब्बारे की ओर ताकता है । ज्योति का किया हुआ गांधी का शृंगार अर्घ्य की भांति विधाता के चरणों की ओर उठता जा रहा था ।

ज्योति ने कहा, "पदार्थ भैया रोवो नहीं, देख सकते हो तो वह देखो । गांधी का सौन्दर्य परम पिता की ओर बढ़ा जा रहा है । वहाँ वह युगों तक चमकता रहेगा । वह देखो !"

पदार्थ भैया ने दृष्टि ऊपर उठाई ।

फिर ज्योति के पैर पकड़ लिये । "ज्योति, ज्योति ! तुमने मेरे नयनों को भी त्याग दिया, तुम कहाँ चली गई । मुझे कुछ दिखाई नहीं देता, ज्योति तुम मुझे क्षमा करो । गांधी पर मेरा नहीं तुम्हारा अधिकार है ।"

"भैया !"

पर पदार्थ भैया जैसे विक्षिप्त हो गये थे, "मैंने यह क्या किया ज्योति ? बता मैंने यह क्या किया ? अरी बोल तो ।"

और तब गांधी के शरीर को लेकर उन्होंने छाती से लगा लिया । और उसे चूमने लगे, चूमते रहे और चूमते चले गये ।

लगता है कि उनका यह चूमना एक दो युग में समाप्त होनेवाला नहीं है ।

○

: १५ :

चोरी !

कमरे को साफ कर झाडू पर कूड़ा रखे जब बिन्दू कमरे से बाहर निकला तो बराण्डे में बैठी मालती का ध्यान उसकी ओर अनायास ही चला गया। उसने देखा कि एक हाथ में झाडू है; पर दूसरे हाथ की मुट्ठी बंधी है और कुछ पीछे की ओर जान-बूझ कर आड़ में कर ली गई है। मालती को लगा कि हो-न-हो, कमरे में से बिन्दू कुछ लाया है। उसने कहा—"बिन्दू !"

दो क़दम पर बिन्दू, पर मानों उसने मालती की आवाज़ सुनी ही न हो ! वह चलता ही गया; बल्कि मालती ने देखा कि उसकी पुकार पर बिन्दू की चाल में कुछ तेज़ी आ गई है। गुस्से में भरकर उसने कहा—"बिन्दू ! ओ बिन्दू ! ठहर, कहां जाता है ?"

इतना कहना था कि बिन्दू तो दौड़ने लगा और वह गया, वह गया। मालती के सन्देह की पुष्टि के लिए यह सब काफी था। उसने तेज़ी के साथ कहा—"सुनते हो जी, देखो, बिन्दू कुछ लिये जा रहा है। जल्दी आओ।"

नंदन पास के कमरे में बैठा अपने पत्र के लिए कुछ लिख रहा था। मालती का यों चिल्लाना उसे अच्छा नहीं लगा और उसने चाहा कि टाल दे; पर मालती माने तब न ! एक सपाटे में वह कमरे में आ गई और बोली—"झटपट उठो। देखो, बिन्दू मुट्ठी में दबाये कुछ ले गया है।"

नंदन ने कलम एक ओर रख दी और जैसे किसी ने जबर्दस्ती पकड़ कर उठा लिया हो, वह उठा। कमरे से बाहर आया तो देखता क्या है कि बिन्दू लौटकर आ रहा है। एक हाथ में झाडू है, दूसरा रीता है और नीचे लटका है। उसे देखते ही मालती उबल पड़ी—"क्यों रे बिन्दू के बच्चे, मैं गला फाड़ती रही और तू रुका तक नहीं ! बोल, हाथ में क्या ले गया था ?"

बिन्दू का चेहरा फक। बोला—"कुछ नहीं, बीबीजी !"

"झूठा कहीं का ! क्यों रे, तेरे हाथ में कुछ नहीं था तो मेरे पुकारने पर फिर तू रुका क्यों नहीं ?" मालती ने रोषपूर्ण स्वर में पूछा।

बिन्दू से बोला नहीं जा रहा था। कहे तो क्या कहे !

तब नंदन आगे बढ़ा। बोला—"बिन्दू, घबराओ नहीं। सच-सच बताओ कि क्या ले गये थे।"

"सच बाबूजी, मेरे हाथ में झाडू थी और कूड़ा था।"

"फिर वही झूठ !" मालती ने चिढ़ कर कहा। "इसे पुलिस में दे दो। लातों के देव कहीं बातों से मानते हैं ! इस बेईमान के ऊपर घर छोड़ रखा है तो इसीलिए कि चीजें उठा-उठा कर ले जाय और ऊपर से झूठ बोले !"

नंदन ने मालती को शांत किया। कहा कि असली बात जानने का यह तरीका नहीं है। फिर बिन्दू को उसने प्यार से समझाया और कहा कि मैं तुमसे कुछ कहूँगा नहीं। ठीक-ठीक बताओ कि क्या ले गए थे ! लेकिन बिन्दू घबराया-सा, खोया-सा, धरती की ओर देखता रहा और नंदन का बहुत आग्रह हुआ तो उसने बस इतना ही कहा कि मैंने कुछ नहीं लिया है।

नंदन फिर भी खीझा नहीं। बोला—"अच्छा चल, देखूं, तू कूड़ा कहां फेंक आया है।"

बिन्दू पहले तो कुछ ठिठका, अनन्तर मुड़कर चुपचाप आगे हो लिया। उसके पैर मशीन की तरह चल रहे थे और कभी-कभी लगता था कि वह लड़खड़ा कर गिर पड़ेगा। आखिर तीनों जने मकान के पिछवाड़े पहुंचे और बिन्दू ने एक स्थान की ओर संकेत करके बताया कि कूड़ा वहां फेंका है। नंदन और मालती ने वह जगह देखीं, उसके इर्द-गिर्द निगाह फेंकी; पर कुछ दीखा नहीं। बिन्दू हर दिन वहां कूड़ा डालता था, चारों ओर कूड़ा-ही-कूड़ा बिखरा पड़ा था। नंदन ने कहा-"बिन्दू, यों हैरान करने से क्या होगा ? बता क्यों नहीं देता कि क्या लाया था ?"

बिन्दू के होंठ खुले, जैसे कुछ कहना चाहता हो; पर फिर बन्द हो गये।

"हां, कहो, रुक क्यों गये ?" नंदन ने शांत स्वर में कहा।

"बाबूजी...." बिन्दू फिर चुप।

"शाबास, कहो-कहो।"

"बाबू....जी, थोड़ी-सी मेवा नीचे पड़ी थी। मैं उठा लाया।"

बिन्दू कह तो गया; पर जैसे वह अनुभव कर रहा हो कि दुनिया का जाने कितना गहरा पाप उसने कर डाला है।

"मैं कहती थी न", मालती बोल उठी, "कि यह कुछ-न-कुछ ले जरूर गया

है । देखा, मेरी बात सच निकली न ?"

"मेवा का तुमने क्या किया, बिन्दू ?"

"खा ली ।"

"इतनी जल्दी ? बिन्दू, झूठ मत बोलो ! सच बता दो ।"

"उधर फेंक दी ।"

नंदन और मालती ने देखा कि उसकी बताई जगह पर थोड़े से काजू और कुछ किशमिशें पड़ी हैं । नंदन ने बिन्दू के कंधे पर हाथ रखा और कहा—"मेरे साथ आओ ।"

बिन्दू चुपचाप मालिक के साथ चल दिया । नंदन उसे लेकर कमरे की ओर गया । मालती ने कहा—"आज इसने मेवा ली है, कल को और कुछ उठा ले जायगा । एक बार नीयत बिगड़ी तो क्या फिर हाथ रुकता है ?"

नंदन ने पत्नी की बात सुनी-अनसुनी कर दी । बिन्दू को साथ लेकर कमरे में गया और कनस्तर खोलकर उसमें से एक मुट्ठी मेवा उसके हाथ में देते हुए बोला—"बिन्दू, लो खाओ ।"

पति के इस नरमी के व्यवहार से मालती आग-बबूला हो गई । बोली-"ऐसे ही तो नौकर बिगड़ते हैं । उसे कुछ कहना तो दूर, उल्टे उसकी खुशामद कर रहे हैं !"

नंदन मुस्कराया । बोला—"मालती, चोर बिन्दू नहीं है, हम हैं । हम क्यों ऐसी चीजें खायं जो सबको नहीं मिलती ?" इसीसे तो चोरी की भावना को जन्म मिलता है । हम लोग रोज मेवा खाते हैं । एक दिन इस बिचारे का मन चल आया और थोड़ी-सी लेली तो क्या हो गया ?"

"मैं कब कहती हूं कि कुछ हो गया । बात मेवा की नहीं है, नीयत की है । इसका जी चला था तो मांग लेता । मैं न देती तब कहता । घर में पचास चीजें रहती हैं । यों तो जिस पर मन आयेगा, उठाकर ले जायगा । और एक दिन यही होना है । वह न करेगा तो तुम करवाओगे ।"

"मालती, यह बात नाराज़ होने की नहीं, सोचने की है । जबतक सब चीजें सबको नहीं मिलतीं, चोरी बन्द हो नहीं सकती । चोरी अच्छी नहीं है, पर आज की स्थिति वड़ी लाचारी की हो गई है ।" नंदन ने समझाते हुए कहा ।

"देख लेना, एक दिन यही बिन्दू घर में से ट्रंक उठाकर न ले जाय तो मेरा नाम

मालती नहीं ।"

इतना कहकर मालती रसोई में चली गई और नंदन पुनः अपनी कुर्सी पर आ बैठा । पर मन उसका दूसरी ही दिशा में चल रहा था । थोड़ी देर वह सोचता रहा । फिर उसने विचारों को समेटा और लेख पूरा करने में लग गया ।

लेख पूरा हुआ तो काफी देर हो चुकी थी । वह उठा और सीधा रसोई में पहुँचा । देखता क्या है कि मालती सिल पर चटनी पीस रही है । नंदन ने कहा—"बिन्दू कहां है ?"

"मैं क्या जानूं ?"

"और कौन जाने ?"

"तुम जानो और तुम्हारा लाड़ला बिन्दू जाने ।"

"उसे निकाल दिया ?"

"निकालने वाली मैं कौन होती हूँ ?"

"कब से नहीं है ?"

"तभी चला गया था ।"

"पानी भरने तो नहीं गया ?"

"नहीं ।"

"फिर ?"

"मैं क्या जानूं !"

नंदन थोड़ा हैरानी में पड़ा । मालती ने उसे देखा तो बोली—"तुम यहाँ के नौकरों को जानते नहीं । अपने घर में होता है तब भी उनका हाथ रुकता नहीं । कुन्दन के यहां कितना अनाज भरा है, फिर भी उस दिन आंख बच गई तो काका के यहां से गेहूँ ले ही गया ।"

नंदन जानता है कि बहस का अन्त नहीं । उसने बात आगे नहीं बढ़ाई और तौलिया उठाकर स्नान करने चला गया । स्नान करने के बाद उसने भोजन किया । थोड़ी देर पहले की बात का असर नंदन और मालती दोनों के मन पर था । भोजन करते समय पति-पत्नी दोनों चुप रहे और खा-पीकर अपने-अपने काम में लग गये ।

दोपहरी बीती और शाम होने को आई; फिर भी जब बिन्दू न लौटा तो मालती के मन को अच्छा नहीं लगा । चौके में अब भी बिन्दू का खाना पड़ा था । "झूठ बोला

तो क्या आखिर बालक ही तो है।" उसने सोचा, "भूखा जाने कहाँ भटक रहा होगा !" कई बार कमरे से बाहर आ-आकर मालती ने बिन्दू को देखा, फिर बगीचे का एक चक्कर लगाया कि कहीं किसी पेड़ के नीचे पड़ा सो न रहा हो। पर बिन्दू वहां कहां था जो मिलता ! मालती आकर पलंग पर पड़ गई और अपने को कोसने लगी कि ज़रा-सी बात को इतना तूल क्यों दिया ! थोड़ी-सी मेवा ले गया था तो क्या गजब हो गया था ?

सोचते-सोचते देर हो गई तो वह उठी और सहन में टहलने लगी। इतने में कुन्दन उधर से निकला तो मालती ने उत्सुकता से पूछा—"कुन्दन, तूने बिन्दू को देखा है क्या ?"

"बिन्दू !" कुन्दन बोला, "अरे, वह तो नदीवाली कोठरी में पड़ा है।"

मालती तत्काल पैरों में चप्पल डालकर बाहर हो गई।

लौटी तो बिन्दू उसके साथ था। बाँह पकड़कर नंदन के कमरे में ले गई और बोली—"देखी तुमने इसकी बात ! यहां से गया है तब से वहां कोठरी में पड़ा है !"

नंदन ने कहा—"क्यों रे, वहां क्या कर रहा था ?"

बिन्दू चुप।

"मैं पूछता हूँ, वहां क्या कर रहा था ?"

फिर चुप।

"अरे, बोलता क्यों नहीं ? मुंह में जबान नहीं है ?"

बिन्दू की आँखें डबडबा आईं।

मालती ने कहा—"इसका पागलपन देखो। सबेरे से कुछ नहीं खाया और भूखा-प्यासा वहाँ पड़ा है ! चल, खाना खा।"

नंदन के कुछ कहने से पहले ही वह उसे चौके में ले गई और स्वयं परोसकर उसे खिलाने लगी। बोली—"भर-पेट खा लेना। भूखा मत रहना।"

नंदन ने पत्नी की बात सुनी और एक प्रसन्नता-भरी मुस्कराहट उसके चेहरे पर दौड़ गई।



: १६ :

जाति और पेशा

अब्दुल ने चिन्ता से सिर हिलाया। नहीं, यह पट्टी उसीकी है। वह रामदास को उसपर कभी भी कब्जा नहीं करने देगा। श्याम जब मरा था तब वह मुझसे कह गया था। रामदास तो उस वक्त नहीं था। उसका क्या हक है ? आया बड़ा हिन्दू बनकर। उस वक्त कहां चला गया था ? अब देखो तो हाथ में लठ उठा-उठा कर दिखाता है। मैं कचहरी में ले जाऊँगा इसको।

उसके शरीर पर एक मैली-सी मिरजई और कटि के नीचे घुटनों तक ऊँची धोती। वह बैठा-बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। इधर जो नाज महँगा बिकता है, उसके पास कुछ रुपया जमा हो गया है। वह अब किसी से क्यों दबे ? और उसने भौं सिकोड़कर गम्भीरता से एक बार ज़ोर का कश लगाया और फिर अपने कैंची से कटे बालों पर हाथ फेरा। जब मुँह से धुआं छोड़ा तो उसका हाथ दाढ़ी को सहला रहा था।

उसके बच्चे बाहर धूल में खेल रहे थे। उन्हें किसीकी भी क्या फिक्र। साथ में ही रामदास के बच्चे भी थे। एक बच्चा धूल में पैर देकर ऊपर से मिट्टी थोपकर घर बनाने की कोशिश कर रहा था। जब चिलम बुझ गयी वह उठा। पत्नी को आवाज़ दी और कह दिया कि वह सम्भवतः देर में लौटेगा। पत्नी कुछ नहीं समझ सकी। अपने इन्हीं विचारों में मग्न वह शहर चल दिया।

दो मील चलकर वह वकील साहब के यहां पहुंचा तो उसने देखा वकील साहब को एक मिनट की भी फुर्सत नहीं; किन्तु जब वह पास जाकर सलाम करके बैठ गया तो उसे पता चला कि वह सिर्फ गवाहों की भीड़ थी जिन्हें वकील साहब कल का बयान रटा रहे थे। वह चुपचाप प्रतीक्षा करता रहा। जब बयान खत्म हो गया, उन्होंने एक गवाह से उसे सुना। उसकी गलतियों को ठीक किया और फिर सन्तुष्ट होकर कहा--"ठाकुरों को उस गांव में कोई नहीं हरा सकता। अब जाओ।"

वकील साहब की आंखों में एक तीक्ष्णता थी जिससे उन्होंने शीघ्र ही अब्दुल को भांप लिया। उनका काम ही यह था। उन्होंने उससे कहा—"अरे बहुत दिन बाद दिखाई दिये। इधर तो आना ही छोड़ दिया था।" फिर हँसकर कहा—"वकील और डाक्टर दूर ही रहें, यही अच्छा है।"

वे धार्मिक आदमी थे। सुबह अंधेरे ही उठकर भजन-पूजन समाप्त कर लेते और फिर सांसारिक कामों में लग जाते। छुआछूत का पूरा खयाल रखते। जब बच्चे सुबह पढ़ने लगते वे अपने मुवक्किलों से बातें करते हुए उनपर भी नजर रखते कि कोई बेकार ही पेन्सिल छील-छीलकर तो समय नष्ट नहीं कर रहा है। पड़ोस के खां साहब से उनके पिता के समय में बहुत मेल-जोल था। किन्तु अब आना-जाना तो है नहीं, बच्चे अलबत्ता साथ खेलते हैं। पड़ोस के खां साहब से उनके पिता के समय में बहुत मेल-जोल था। किन्तु अब आना-जाना तो है नहीं, बच्चे अलबत्ता साथ खेलते हैं। उनका सिर्फ सलाम दुआ का रिश्ता है और कुछ नहीं। वे मुसलमान, ये हिन्दू। अब पड़ोस से सब व्यवहार बन्द हो चुका था। वकील साहब की सदा यही कोशिश रहती कि कैसे भी हो खां साहब यहां से उखड़ें तो मैं मध्यस्थ बनकर वह मकान किसी शरणार्थी को दिला दूँ और बीच में जो अपना हो उसे प्राप्त करूँ।

श्यामा की भूमि पर अब्दुल का यह हक जमाना कतई नापसन्द रहा पर उनको क्या? उन्हें तो पैसा मिलना चाहिए।

उन्होंने कागज पर बहुत कुछ लिखा और कहा—"केस पेचीदा है। जबानी किसी ने कुछ कह दिया, उसे साबित करना कठिन काम है। और कोई लिखा-पढ़ी है?"

"होती तो क्या बात थी" उन्होंने स्वयं कहा; क्योंकि अब्दुल खाली आँखों से देख रहा था। उन्होंने ज़ोर देते हुए कहा—"और तुम्हारी अड़ पड़ गई है।"

अब्दुल ने सिर हिला कर स्वीकार किया—हाँ, अड़ पड़ गई है। जमीन तो ऐसी कोई बहुत नहीं है, पर रामदास जीत गया तो अब्दुल सदा के लिए दबकर रहेगा।

वकील साहब समझ गये। वे समझदार आदमी थे।

"कौन से डिपटी की कोरट में जायेगा" अब्दुल ने पूछा "ऐसी जगह पहुँचाओ जहां काम हो जाय।"

वकील हंसे। "कहा—तकवी के यहां ले जाता, पर वैसे सुन्दरभान ठीक रहेगा। क्यों? आदमी तो वह ठीक है?"

अब्दुल ने कहा—"आप जानें।"

वकील साहब ने कहा—"अरे भाई, तुम्हारी भी तो राय लेनी चाहिए। मैं और वकीलों की तरह नहीं हूँ।

उन्होंने उसे कुछ और समझाया। रुपये गिन लिये। आश्वासन दिया। वह प्रसन्न-सा लौट आया। वकील साहब खुश हुए। सुन्दरभान से उनकी अदावत थी। वहां यह मुसलमान कभी नहीं जीतेगा। हिन्दू की जमीन हिन्दू को ही मिलेगी। एक पन्थ दो काज सिद्ध होंगे। तकवी दोस्त तो है, लेकिन क्या ठीक? किन्तु अब्दुल कुछ और ही सोच रहा था। वकील को रुपये देते ही बोझ उतर गया। जिस समय वह गांव पहुंचा उसे लगा उसने रामदास को हटा दिया था। मामूली नहीं है यह वकील। कितने गवाहों को साथ पढ़ा रहा था। जब उस झूठे मामले को वह यों ही सुलझा गया तो फिर उसका तो एक सहारा भी है। वह जरूर जीत कर रहेगा।

तभी किसीने कहा—"कहो अब्दुल, अच्छे तो हो? वहुत दिन बाद दिखाई दिये।"

गरगलाती आवाज में एक भारीपन था जिसमें अधिकार, स्नेह और चातुर्म्य की भावना थी। अब्दुल ने देखा मौलवी साहब थे। वह खुशी से अपना किस्सा सुना गया।

उसकी बात सुनकर वे उसे ऐसे देखते रहे जैसे किसी बेवकूफ को आज जिन्दा पकड़ लिया था। अत्यन्त गम्भीर मुद्रा बनाकर उन्होंने कहा—"अब्दुल, तू सचमुच बच्चा है।"

अब्दुल चौंक उठा। उसने पूछा—"क्यों? क्या बात है?"

लम्बा चोगा पहननेवाले मौलवी साहब की उंगलियाँ उनकी खिचड़ी दाढ़ी में उलझ गयीं। वे चुप खड़े रहे। उनके उस मौन को देखकर अब्दुल को भय होने लगा। वह हल और जमीन का मोटा काम करनेवाला किसान अल्लाह के सूक्ष्म तत्त्वों की समझनेवाले मौलवी साहब को इस तरह खामोश देखकर सिहर उठा।

उन्होंने मुसकराकर कहा—"अभी वह शायद तुमने सुना नहीं। हिन्दू अब मुसलमानों पर खार खाये बैठे हैं। यह वह बोदा हिन्दू नहीं है जो हमारा गुलाम बनकर रहता था, अब वह हमें गुलाम बनाकर रखना चाहता है।"

अब्दुल कांप उठा। मौलवी साहब अपनी भारी आवाज़ में कहते रहे—"सूबेदार

तलवार लगाकर घूमता है। वह कहता है इन्हें सूई की नोक बराबर ज़मीन पर भी नहीं रहने दी जायेगी। कोई रोकनेवाला है उसे ? कोई नहीं। क्योंकि सुन्दरभान सबसे बड़ा अफसर है। उसके सामने कौन बोल सकता है ?

उन्होंने हाथ फैलाकर समझाते हुए कहा—आज हल्के में सब मुसलमान हैं। अपना दारोगा है, अपना तहसीलदार, मगर सुन्दरभान अकेला हिन्दू डिप्टी है। मुसलमानों को दबाकर रखना चाहता है। तकवी है-अपनी बातें सुनता है, तरफदारी करता है, ठीक है, मगर डरता है। जहां हिन्दू-मुसलमान का सवाल आया फौरन अपने आपको ईमानदार साबित करने के लिए हिन्दू की तरफ हो जायगा। अगर ऐसे लोग न होतें तो क्या मुसलमान इतना दबकर रहता ?

अब्दुल संकट की-सी हालत में पड़ गया। अब वह क्या करे। कुछ भी हो आखिर जब वह दीन भाई है तो क्या कुछ भी खयाल नहीं करेगा ? तकवी ही ठीक रहेगा।

अब्दुल दूसरे दिन जब वकील साहब के यहां पहुँचा, वकील साहब अकेले बैठे थे। उनकी स्त्री पर्दे के पीछे खड़ी उनसे कुछ बातें कर रही थी। अब्दुल को देखकर वह भीतर चली गयी।

"आओ, आओ अब्दुल" वकील साहब ने आरामकुर्सी पर लेटते से बैठते हुए कहा। अब्दुल जाकर बगल में जमीन पर बैठ गया। काफी तकलीफ के साथ उसने अपनी बात को छिपाकर उनसे कह दिया।

वकील साहब ने अधमुंदी आंखों से देखा। तकवी के यहां मामला पहुंचाना उनके बस की बात है लेकिन उसमें वही खतरा है। मुसलमान कैसा भी दोस्त हो, आखिर मुसलमान है। वह जब देखेगा कि जमीन का मामला है, फौरन मुसलमान की तरफ हो जाएगा, दोस्ती धरी रह जाएगी। केस तो शायद वे जिता दें, पर हिन्दुओं का इसमें नुकसान होगा। मुसलमान को जमीन दिलाने का मतलब है इनके यहां पट्टा कर देना। उन्होंने अब्दुल की बात पर हर पहलू से विचार किया।

वे समझ गए। इससे किसी ने कहा है कि तकवी मेरा दोस्त है। वहां काम जल्दी होगा। और फिर मुसलमान मुसलमान की तरफ झुकता है। इस विचार से उन्हें कोफ्त होने लगी। उन्होंने सोचा वे खुद की केस कमजोर कर देंगे। पर इसमें उनकी बदनामी होगी। फिर वे मुस्करा उठे। क्या बदनामी होगी ? ऐसा कमजोर रखेंगे कि तकवी उल्टा फैसला देगा। उनपर क्या चोट आएगी। वह तो मुसलमान है।

उन्होंने कहा—अब तो खर्चा बढ़ेगा अब्दुल। समझे ? मैं जितना गहरा जाता हूँ उतना ही मामला पेचीदा होता जाता है। तकवी से कुछ नहीं कहूँगा। सुन्दरभान से कह देता। केस मैं तकवी की कोर्ट में करवा दूंगा।

वे यह झूठ बोलते तनिक भी न हिचके। सुन्दरभान उन्हें दूर रखते थे।

परिणामस्वरूप कुछ रुपये अंटी में से फिर झड़ गये। हृदय फिर हलका हुआ। अब्दुल जब लौटा तो फिर उसके पांव जमीन पर पड़ने से इन्कार कर रहे थे, जैसे वह उड़ रहा था अब क्या है ? अगर तकवी भी उसकी मदद नही कर सकता, तो फिर खुदा भी नहीं कर सकता। मौलवी साहब कुछ भी हों, उन्हें मुकदमा करने का हक थोड़े ही है। रास्ते में देखा। सब बच्चे खेल में इधर-उधर भाग गये थे। एक घुटनों पर चलने वाला रह गया था। उसने रामदास के बच्चे को गोद में उठा लिया। धूल में सना हुआ बच्चा रो रहा था। उसने उसे पुचकार कर चुप किया और उससे बात करने लगा। उसका मन प्रसन्न हो रहा था। कैसा मजे का है। बड़ी-बड़ी आंखों से घूर रहा है।

तभी रामदास ने पुकार कर कहा—"इसे तो रहने दो। दोस्ती करने को मैं काफी नहीं हूँ ?" वह सामने से आ रहा था। अब्दुल ने बच्चे को उतार दिया। बात लग गई थी।

अब घरों के बीच की भीत और ठोस हो गई, अभेद्य हो गई। रामदास ने बच्चे की हिफाजत के लिये कुछ टोटका किया था। अब्दुल ने सुना तो उसका हृदय कसक उठा। मुझे इतना कमीना समझता है ? और प्रतिशोध के शोले भीतर-ही-भीतर भड़क उठे। बीबी से उसने दृढ़ता से कहा—"आज से रामदास हमारा बैरी है। समझती हो ?" स्त्री ने देखा। वह कुछ नहीं समझ सकी।

कई दिन बीत गये।

अब्दुल हार गया था। तकवी ने उसके खिलाफ फैसला सुनाया था। उसके सब-डिवीजन में कुछ हिन्दु-मुस्लिम तनातनी थी। सरकार ने उसपर कडी डांट लगाई थी। उसकी नौकरी का चक्कर था। वकील साहब दोस्त थे। उनके मुवक्किल होने में ही हानि थी और फिर मुसलमान होना तो गजब था। सब सुनकर मौलबी साहब ने हंसकर कहा—"मैंने पहले कहा था कि वह हिन्दुओं से दबता है। वकील नरोत्तम बड़ा घाघ आदमी है। जब तुम कोरट बदलवाने गये, जरा न हिचका। वह जानता था कि तकवी पोच आदमी है। उससे हिन्दू का कभी नुकसान नहीं हो सकता।"

"लेकिन डिपटी तो अपना ही था।" अब्दुल ने प्रतिवाद किया। "मुसलमान तो बेकार है, हिन्दू तो अलग है ही। फिर मैं करता भी क्या ? अपना तो कोई भी नहीं निकला ?"

मौलवी साहब सुनकर परास्त हुए। किन्तु हार कैसे जाते। कहा—"तू तो सीधा आदमी है अब्दुल। इस मामले में बड़े-बड़े चक्कर खा जाते हैं। अंग्रेजों के ये कानून तो ऐसे हैं कि अच्छा वकील हो, एक के चार मतलब निकाल ले। तू मेरी राय में एक काम कर। किसी मुसलमान वकील के पास जा। मुकदमे की जीत-हार की कुंजी डिप्टी नहीं, वकील है वकील। समझा ?

अब्दुल फिर विचार मग्न हो गया। मौलवी साहब का कहना ठीक है। पेशकार ने भी उससे अकेले में कहा था कि केस ही इतना कमजोर है तब तकवी क्या खाक कर लेगा ? और पेशकार से सुनी यह चार रुपये कीमत की बात उसके कानों में गूंज उठी।

जब वह घर पहुँचा उसकी स्त्री चूल्हे पर खाना पका रही थी। वह बैठा-बैठा सोचता रहा। स्त्री घर की मालकिन थी। उसके क्षेत्र में अब्दुल को बोलने का कोई अधिकार नहीं था, इसीलिए वह उसके मामलों में अधिक दिलचस्पी नहीं लेती। अब्दुल की राय में औरत का दिमाग छोटा बनाया गया था। वह खा-पीकर लेट गया और अपनी चिन्ता में मग्न हो गया।

दूसरे दिन वह फिर वकील साहब के यहाँ पहुँचा। उस समय उसके हृदय में एक विक्षोभ था। उसने तीखी दृष्टि से देखकर आँखें फिरा लीं जैसे उनसे उसे घृणा हो गई थी, जैसे वह किसी अद्‌भुत पशु के सामने खड़ा था जिसमें मनुष्यता के कोई भी लक्षण उसे दिखाई नहीं देते थे।

वकील साहब मुकदमा हारे हुए की प्रवृत्ति को खूब जानते थे। अब्दुल को उन्होंने गमगीन देखा तो मुस्कराये। कहा—"क्यों ? मैंने कहा नहीं था ? सुन्दरभान के यहां मामला ठीक रहता, लेकिन तुम नहीं माने। मैं तभी समझ गया था कि किसी ने तुम्हें बहकाया ज़रूर है। वर्ना तुम मेरे पुराने मुवक्किल ठहरे। आजतक कभी मेरी बहस से तुम हारे हो ? कभी नहीं। फिर अबकी क्या हुआ ?"

अब्दुल सिर झुकाये बैठा रहा।

वकील साहब ने फिर कहा—"भाई, यह मामला तो उलझ गया है। अब तो तुम कब्जा ले लो। मैं दूसरा केस लडूंगा। समझ गये। कहो कि ज़मीन मेरी है।

कई साल से मैं जोत रहा हूँ। अब किसी का हक़ कैसे चल सकता है। मुकदमा किया था, उसपर अपील चल सकती है। पहले जाकर दारोगा से मिलो। कुछ रुपया ज़रूर खर्च करना पड़ेगा। कब्जा सच्चा झगड़ा झूठ।"

वह उठा। सीधे दारोगाजी के पास गया। थाने में उस वक्त भीड़ थी। कई आदमी पकड़े गये थे। कोई चोरी का मामला था। वह बैठकर इन्तजार करने लगा। वह मन-ही-मन प्रसन्न हुआ। दूसरों को फँसा देखकर उसे खुशी हुई, क्योंकि उससे उसका नुकसान नहीं था। कुछ देर बाद उसने देखा कि दारोगाजी अन्दर चले गये और वे आदमी भी एक-एक करके उनके पास बुलवा लिये गये।

बाहर बैठा-बैठा वह ऊँध गया। गांव के थानेदार बादशाह आदमी थे। उनके सामने सिर उठाना कोई साधारण बात नहीं थी। अब शाम हो गई थी। कुछ देर बाद उसने देखा कि गाँव के लोग राम-राम करके चले गये। सब छूट गये थे। उसे दारोग़ा के खुले दिल पर विश्वास हुआ, एकान्त में अपनी कहानी सुनाई। दीन का महत्त्व समझाया पर काम मुफ्त नहीं हुआ। और वह भी सिर्फ कोशिश करेंगे।

खाली होकर जब वह घर लौटा तो खटोले पर बैठकर पाँव फैला दिये। उसने एक लम्बी सांस छोड़ी और सिर से पगड़ी उतार कर धर दी। फिर अपनी कैंची फिरी खोपड़ी पर हाथ फेरा। और फिर उठकर खाट पर लेट गया, जिसपर से उसके पांव बाहर निकल रहे थे।

बीबी सामने आ गयी। उसने मुस्करा कर कहा—"आज बड़ी देर कर दी। कहाँ गये थे ?"

उसे कुछ-कुछ मालूम था कि उसके पति का रामदास से मुकदमा चल रहा था, जिसमें उसका पति हार गया था। अब वह इसीकी झेंप में बैठा है। अपना अधिकार दिखाने को जो उसने प्रश्न पूछा वह ठीक निशान पर बैठा। अब्दुल का सिर झुक गया।

उसकी पहले तो हिम्मत ही न पड़ी, किन्तु उसके बार-बार पूछने पर उसे लाचार होकर सब सुनाना पड़ा। वह चुपचाप उसकी ओर देखती रही। उसके चुप होते ही स्त्री का चातुर्य्य अब खुल पड़ा—"मैं कहती थी न कि पहले मेरी वात सुन लो। अब हो गया ?"

उसका व्यंग सुनकर अब्दुल ने कहा—"तो मैं करता भी क्या ?"

स्त्री ने उसे घूर कर देखा। अब्दुल सहम उठा। तब स्त्री ने अपने दोनों हाथ

चलाकर कहा—"वह सब बड़े लोगों के खेल हैं। वकील से कहो, डिपटी के यहाँ जा, चपरासी से कहो। वह डिपटी का भी बाप है। सीधे मुँह बोल नहीं कढ़ता। एक हैं थानेदार, वाह...वाह..." उसने मुँह बनाया, जिसको देखकर अब्दुल हँस दिया। उस स्त्री के मुँह पर दो झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। वह बकबक करती रही। ये लोग सब ऐसे ही हैं। अपना तो यही रामदास है। उसकी बहू से मैं कह देती। घर का मामला घर ही में सुधर जाता था। पर तुम क्यों मानने लगे। दो पैसे मिले बस चले कचहरी। कुछ और भी खयाल रहता है? चले आये बड़े अकलमन्द। वकील को दे आया हूं जमाना कहेगा, इसके बड़े-बड़े साले हैं...." वह हंस दी।

अब्दुल अधीर-सा देखता रहा। इसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। औरत की अक्ल ही कितनी। यह क्या बक रही है? वे सब और हैं। स्त्री ने फिर कहा—"उन्हें नहीं है हिन्दू-मुसलमान की जात। वे तो बेईमान हैं, बेईमान।" अब्दुल चौंक उठा; लेकिन वह खुद तो मुसलमान है। उसने कहा—वाह! यहां शहर-गांव, गांव-शहर का चक्कर लगाते टांगें टूट गईं और तू है कि अपनी रट लगाये जाती है। अरे आखिर इतने लोग हैं। वे कुछ भी नहीं समझते? एक तू ही दुनिया में अकलमन्द बाकी है।

स्त्री इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं थी। उसने कहा—"रहने दे। उसका काम कभी ठीक नहीं चलता।"

अब्दुल ने हाथ उठाकर कहा—"रहने दे। कल मैं किसी बिरादरी के वकील से राय लूंगा, फिर देखो क्या होता है....."

स्त्री ने चेतकर सिर झुका लिया।

दूसरे दिन वह हामिद खां वकील के पास गया। हामिद खां अब पेशकारों की 'जयहिन्द' सुनकर मुवक्किलों से रिश्वत दिलवानेवाले आदमियों में थे। पहले मुस्लिम लीगी थे, अब राज-भक्तों में थे, कांग्रेस वालों के पीछे-पीछे लगे डोलते थे। स्वयं उन्हें अपने ऊपर कभी-कभी आश्चर्य होने लगता था। इस समय वे पान चबाते हुए आराम कुर्सी पर बगल में रखा हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। कभी-कभी बढ़े हुए पेट पर हाथ फेर लेते।

अब्दुल ने इधर-उधर की बातों के बाद अपनी बात कहना शुरू किया। हामिद खां ने चौंक कर पूछा—"क्या कहा? सुन्दरभान की कोर्ट से मामला तुमने हटवाकर तकवी की कोर्ट में करवा दिया?"

अब्दुल ने कहा—"जी हां, बदलवा लिया। नरोत्तम वकील ने यही कहा था।"

उन्होंने काटकर कहा--"बड़े अजीब आदमी हो, तुमने निहायत गलती की। तुम्हें उसके सिवा कोई वकील नहीं मिला। मुसलमानों में से कोई नहीं ठीक जंचा तुम्हें? वह बड़ा तास्सुबी हिन्दू है। उसीकी गड़बड़ी से सब कुछ बिगड़ गया। और तकवी से उसकी दांत काटी रोटी है। तकवी उनके जरिये खूब खाता है। डिप्टी सुन्दरभान ठीक थे। मुझसे क्यों न कहा? मैं उनसे जो चाहे करा सकता हूं...."

अब्दुल ने शंका की—"वह तो हिन्दू है..."

"हो" हामिद खां ने कहा—"मेरा दोस्त है। इन मामलों में वह फर्क नहीं करता।"

और चार रुपये देकर जब वह लौटा उसका मन ग्लानि से फट रहा था। बीबी की बात सच थी। वे लोग वास्तव में और थे। उसका अपना तो वही रामदास था, और कोई नहीं।

खेत पर रामदास को देखकर, उसने पुकार कर कहा—"राम-राम भैया।"

रामदास ने गर्व से देखा और व्यंग से हंसा। खाली जेब वाले अब्दुल ने उस अपमान को पी लिया। आज उसे लग रहा था कि जो सत्य उसने पहचान लिया है। रामदास अभी उससे बहुत दूर है। लेकिन जब यह घर पहुंचा उसने पत्नी से कहा--"कल मैं रामदास पर अपील दायर करूंगा...।"



: १७ :

आपरेशन

डा० नागेश उस दिन बड़ी उलझन में पड़ गये। वह सिविल अस्पताल के प्रसिद्ध सर्जन थे। कहते हैं कि उनका हाथ लगने पर रोगी की चीख-पुकार उसी प्रकार शान्त हो जाती थी जिस प्रकार मा को देखते ही शिशु का क्रन्दन बन्द हो जाता है। जितना भयंकर आपरेशन होता था उनकी मुस्कान उतनी ही मधुर होती थी। कह सकते हैं कि उनकी हंसी कठिन परीक्षा के अवसर पर फूटती थी पर उस दिन जैसे सलवटें खुलने के स्थान पर और गहरी हो उठी। जैसे-जैसे वह प्यार के हाथों से उन्हें दूर करने की कोशिश करते थे तैसे-तैसे वे और भी मुखर हो आती थी।

वह तब काम समाप्त करके लौटने की बात सोच रहे थे! कई दिन से उन्हें कोई बड़ा आपरेशन नहीं करना पड़ा था। छोटे-मोटे आपरेशन उनके सहकारी कर लेते थे, इसलिए अक्सर उनकी छुट्टी रहती थी। लेकिन उस दिन जैसे ही उन्होंने अपने सहकारी से लौटने की बात कही दूसरे साथी ने आकर कहा--"डाक्टर! शीघ्र आइये।"

डाक्टर ने पूछा—"क्यों क्या है ?"

"एक अद्‌भुत केस है।"

"आपरेशन का ?"

"जी हां।"

"कोई घायल है ?"

"जी नहीं, वह पूर्ण स्वस्थ है।"

"तो.......?"

"वह चाहता है कि मस्तिष्क का आपरेशन कर दिया जाये।"

वह चल रहे थे और बातें कर रहे थे। मस्तिष्क के आपरेशन की बात सुनकर वह हठात ठिठके, पूछा—"क्या तुम ठीक कह रहे हो।"

साथी ने उसी स्वाभाविकता से कहा—"देखने में उसे कोई रोग नहीं जान पड़ता। वह एक साधारण स्वस्थ आदमी है, सुशिक्षित है और देश के लिए जेल हो

आया है ।"

"सम्भवतः पागल है ?'

"शायद ! उसकी बातों से मन पर यही असर पड़ता है, पर कभी-कभी वह इस प्रकार बातें करता है कि उसे पागल मानते दुःख होता है ।"

डा० नागेश मुस्कराये, बोले—"तब वह निस्सन्देह पागल है । दुख सदा पागलपन पर ही होता है ।" और वह मन्त्रणा भवन के द्वार पर आ गये । साथी ने आगे बढ़कर किवाड़ खोले । डा० नागेश ने देखा—सामने कुरसी पर बैठा हुआ एक व्यक्ति उठ कर खड़ा हो गया है । वह एक साधारण व्यक्ति है । चाल-ढाल बताती है वह सुसंस्कृत है क्योंकि उसने जिस विनम्रता से प्रणाम किया वह विरले जन में पाई जाती है । वह मुस्कराया भी और तबतक नहीं बैठा जबतक डा० नागेश अपनी कुरसी पर नहीं पहुंच गये । यद्यपि उसकी आंखें कुछ अस्वाभाविक रूप से चंचल थी पर वह बोलने को विशेष उत्सुक नहीं था । उसकी पोशाक श्वेत खद्दर की थी । गांधी टोपी, कुरता और पाजामा । पैरों में सैन्डिल थी और जेब में कोई पैन जिसे एक दम पहचानना कठिन था । डा० नागेश ने सीधे स्वभाव एक प्रश्न किया—"जी, कहिए क्या आज्ञा है ?"

उत्तर मिला—"आपकी कृपा है ?"

"आप मुझसे मिलना चाहते थे ?"

"जी....जी हां ।"

"मैं उपस्थित हूं ।"

वह झिझका नहीं, बोला—"जी, बात यह है कि मैं अपने मस्तिष्क का आपरेशन करवाना चाहता हूं ।"

"मस्तिष्क का...?"

"जी हां, देखिये यहां पर"—उसने अपनी टोपी उतार कर मेज पर रख दी और दाहिने हाथ से गरदन के पृष्ठ भाग को दबाते हुए कहा—"देखिये यहां पर बहुत तेज दर्द होता है । फिर धीरे-धीरे ऊपर तक चला जाता है ।"

डॉक्टर ने वहीं बैठे-बैठे पूछा—"हमेशा होता है ?"

"जी, आरम्भ में तो कभी-कभी होता था, पर अब प्रायः सदा ही होता रहता है । कभी-कभी तो इतना तीव्र होता है कि तिलमिला उठता हूं ।"

"इस समय कैसा है ?"

"इस समय तीव्रता नहीं है । होती तो मैं यहां न बैठ सकता ?"

"उसके होने का क्या कोई विशेष समय है ?"

"कुछ निश्चित नहीं पर बहुत देर एकान्त में रहने पर अथवा बहुत बातचीत के बाद या रात्रि के समय अक्सर हो जाता है।"

"आप तनिक लेटेंगे ?"—डा० नागेश ने कहा और वह स्वयं भी उठ कर उसके पास आ गये, पूछा—"आपका शुभ नाम ?"

"सन्तकुमार,"—उसने लेटते हुए उत्तर दिया। डाक्टर ने उसके सिर को दबाया। दर्द के स्थान की अच्छी तरह परीक्षा की। पूछते रहे—"हां, तो सन्तकुमारजी, यहां पर दर्द बहुत होता है ?"

"जी हां, यही तो मनुष्यता का स्थान है।"

"क्या...?"

"जी हां, यहां वे गुण जन्म लेते हैं जिनसे मनुष्यता का निर्माण होता है।"

डाक्टर हंसे—"आप तो काफी ज्ञानी जान पड़ते हैं।"

"डाक्टर साहब," सन्तकुमार ने उत्सुकता से कहा, "प्रेम, सौहार्द, सहानुभूति, करुणा आदि गुणों का स्थान यही है। यहीं से ऊपर जा कर वे उन ज्ञान तन्तुओं का निर्माण करते हैं जो मनुष्य को बुद्धि प्रदान करते हैं।"

"निस्सन्देह !" डाक्टर ने प्रशंसा के स्वर में कहा, पूछा—"जब दर्द उठता है तो कैसा लगता है ?"

"तब...तब डाक्टर साहब, ऐसा होता है कि जैसे मस्तिष्क में कानखजूरा घुस बैठा है। उसके पंजों की जकड़ मैं स्पष्ट अनुभव करता हूं। फिर तो जैसे ग्लानि से हृदय टीसने लगता है। जी में उठता है कि सिर दीवार में दे मारूं या किसी का गला घोट दूं।"

"और...?"

"और कभी-कभी रोने लगता हूं, हिचकियां बंध जाती है।"

"ऐसा ही होता है"—डाक्टर ने गम्भीर होकर कहा और फिर धीरे-धीरे सिर दबाते हुए एक नस को पकड़ा, उसे दबाया, पूछा—"कैसा लगता है ?"

लेकिन उत्तर में डाक्टर ने देखा—सन्तकुमार की मुट्ठियां मिंच रही हैं। हाथ ऐंठने लगे हैं। शिरायें उभर आई हैं, देखते-देखते उसने सिर को एक झटके के साथ डाक्टर के हाथों से छुड़ा लिया और उठ बैठा। उसकी पुतलियां तीव्रता से घूमने लगी। डाक्टर ने शीघ्रता से अपने सहकारी को पुकारा—"डाक्टर कुमार, अभी सुई लगानी होगी, जल्दी करो, और नर्स तुम मिक्श्चर ले आओ।"

कुल पांच-सात मिनिट में यह सब हो गया। सन्तकुमार कई क्षण तक एक थके यात्री की भांति बेबस लेटा रहा। फिर एकाएक उठ बैठा। वह शिथिल था। पर

उसकी आंखें शान्त थी । उसने डाक्टर को तनिक अचरज से देखा फिर आंखें मलीं । डाक्टर ने धीरे से कहा—"अब आप की तबियत कैसी है ?"

वह फुसफुसाया—"आपने अभी तक मेरे मस्तिष्क का आपरेशन नहीं किया ?"

डाक्टर ने कहा—"अभी नहीं, अभी तो मुझे तैयारी करनी होगी पर विश्वास रखिए करूंगा अवश्य ।"

ऐसा लगा सन्तकुमार को विश्वास नहीं आया । तब अनुभवी डाक्टर बोले—"क्या आप अस्पताल में रहना पसन्द करेंगे ?"

"अवश्य !"—रोगी ने सहसा चमकते हुए कहा ।

डाक्टर को इस विचित्र रोगी में दिलचस्पी थी । उसने अपने सहकारी को उचित प्रबन्ध करने को कहा । और जाते हुए बोले—"रात को कोई परिवर्तन हो तो मुझे तुरन्त सूचनां मिलनी चाहिए ।"

'फिर वह चले गये परन्तु वह रोगी उनके मस्तिष्क से नहीं जा सका । अपनी पत्नी से उसका वर्णन करते हुए वे बोले—"मुझे विश्वास है कि इस व्यक्ति को कोई गहरा सदमा पहुंचा है ।"

"हो सकता है ।"

"और वह सदमा भी ऐसा है जिसके लिए वह अपने को दोषी मानता है ।"

"ऐसी क्या बात है ?"

"कुछ समझ में नहीं आता । वह युवक नहीं है, अधेड़ है । हो सकता है वह किसी विधवा का धन हड़प गया हो ।"

पत्नी ने पूछा—"क्या उसकी आंखों में क्रूरता झलकती है ?"

"यह तो बात है । उसकी आंखों में क्रूरता नहीं बल्कि भय और ग्लानि का अद्‌भुत संमिश्रण है ।"

"तो"—पत्नी ने कहा—"हो सकता है वह अपराध भूल से हो गया हो ।"

डाक्टर बोले—"मैंने दुनिया देखी है । मैं जानता हूं वह पश्चात्ताप की आग में जल रहा है । उसने कोई भयंकर पाप किया है । कभी-कभी तो उसकी आंखें इतनी निस्तेज हो जाती है कि दिल पर चोट लगती है..."

वह अभी अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाये थे कि बाहर से नौकर ने आकर कहा, "डाक्टर कुमार आये हैं ।" उनका माथा ठनका । वह शीघ्रता से बाहर आये । कुमार ने उन्हें बताया, "नया रोगी पागल हो गया है ।"

डाक्टर जैसे थे वैसे ही चल पड़े । जब वह अस्पताल पहुंचे तो उस रोगी को

एकांत कमरे में ले जाया जा चुका था। उस निस्तब्ध-रात्रि में उन्होंने दूर से ही उसकी तीव्र वेदना-मयी वाणी को सुना। वह कह रहा था, "मैं पागल नहीं हूं। नहीं, मैं पागल नहीं हूं। मैं बिलकुल होश में हूं और मैं सोच-समझकर कहता हूं कि मैंने महात्मा गांधी की हत्या की है।"

डाक्टर नागेश ने हठात आकाश में विद्युत का अपूर्व प्रकाश देखा। वह सिहर उठे। कई क्षण बसे आगे बढ़ने के भ्रम में जहां के तहां खड़े रहे। स्वर उसी तरह उठ रहा था, "क्या तुम मेरा विश्वास नहीं करते ! तुम ऐसे क्यों देख रहे हो ? अहा हा हा, तुम सोच रहे हो गांधीजी को मारने वाला तो गोडसे है। उसने अपना दोष स्वीकार कर लिया है। अहा हा हा, तुम सब मूर्ख हो—"

ठीक इसी समय डाक्टर ने उस कमरे में प्रवेश किया। उनके आते ही नर्स और डा० कुमार एक ओर हट गये। रोगी ने उन्हें देखा। वह मुस्कराया, "तुम आ गये। मैं तुम्हारी राह देख रहा था। तुम समझदार हो। ये लोग मेरी बात मानते ही नहीं।"

डाक्टर नागेश ने चुपचाप उसके पास जाकर सिर पर हाथ रखा, सहलाया फिर प्यार से थपथपाकर बोले, "ये लोग तुम्हारी बात नहीं समझ सकते। तुम मुझसे कहो, क्या कहते हो ?"

न जाने क्या हुआ ! कहां तो वह हुंकार रहा था, कहां वाणी उच्छासित हो उठी। बोला "मैंने महात्मा गांधी की हत्या की है। मैंने उन्हें मारा है—"

और कहते-कहते वह फूट पड़ा। दूसरे ही क्षण उसकी हिचकियां बंध गई। डाक्टर का हृदय एक साथ करुणा, अचरज और भय से विह्वल हो गया। उन्होंने कुमार को संकेत किया कि वे इन्जैक्शन ले आये। और फिर रोगी से बोले— "सन्तकुमार, तुम वीरपुरुष हो, ऐसे नहीं रोया करते। देखो मैं तुम्हारी बात का विश्वास करता हूं।"

सन्तकुमार ने दृष्टि उठाकर पूछा, "तुम मेरी बात का विश्वास करते हो।"

"हां ?"

जैसे शिशु ने रंगीन गुब्बारा पाया हो। वह हर्ष से भर कर बोला "तुम समझदार हो। तुम गोडसे को हत्यारा नहीं मानते। हत्यारा मैं हूं। वह मेरा दूत है, मेरा हाथ है, मैं मस्तिष्क हूं। हाथ कभी अपने आप काम नहीं करता। जानते हो—?"

डाक्टर ने यंत्रवत् अपने को चौंकाते हुए कहा, "हां, मैं जानता हूं कि हाथ अपने आप कुछ नहीं करते। वे सदा मस्तिष्क की आज्ञा मानते हैं।"

"निस्सन्देह । हाथ सदा मस्तिष्क की आज्ञा मानते हैं । मेरे मस्तिष्क ने जब बार-बार हाथों से कहा—वह गलत है । वह हमें विनाश की ओर ले जा रहा है । वह हमें नष्ट कर देगा तब—तब—"

उसका स्वर फिर बदला । वह क्रोध से कांपने लगा । बोला—"तब हाथों ने मस्तिष्क की वेदना को समझा । और आज्ञाकारी सेवक की भांति उसकी वेदना दूर करने को आगे बढ़े--"

"ठीक है ऐसा होना ही था", डाक्टर नागेश ने यंत्रवत कहा और फिर गरदन को झटका दिया । उन्हें लगा जैसे वह स्वयं संज्ञा खो रहे हैं और एक ऐसे मनोजगत में पहुंच रहे हैं जहां सघन अन्धकार में एक ज्योति चमक उठी है । रोगी कह रहा था और रो रहा था—"और उस आज्ञाकारी ने एक दिन अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिए महात्माजी को मार डाला । उस निर्दयी को तनिक भी दया नहीं आई । आती कैसे ? वह तो यन्त्र था । दोष तो मस्तिष्क का था—"

वह सहसा तीव्र हुआ "हां, दोष मेरे मस्तिष्क का था । मेरे मस्तिष्क ने उसे पथभ्रष्ट किया, उसे उत्तेजित किया और इस प्रकार शांति के उस स्त्रोत का गला घोट दिया । डाक्टर, उसने अपने जन्म-दाता को ही मार डाला—"

डाक्टर सहसा कुछ न कह सके । सोच रहे थे—वह पागल है अथवा कोई ऋषि । यह एक ऐसे सत्य का उद्घाटन कर रहा है जो गोपनीय होकर भी असत्य नहीं है । कहते हैं पागल की अन्तर्दृष्टि खुल जाती है ।

रोगी सिसक रहा था । उसने अपना सिर दोनों हाथों से पकड़ रखा था । उसके घुटने मुड़ रहे थे । वह सिकुड़कर गेंद की तरह बन गया था । डाक्टर कुमार ने उसको फिर सुई लगाई । अचरज इस बार वह हिला तक नहीं और देखते-देखते कुछ क्षण में वह शिथिल होकर बिस्तर पर गिर पड़ा । वह रह-रहकर सुबक उठता था । फुसफुसाने लगता था, "जो शक्ति उस महात्मा ने मुझे जीने के लिए दी थी उससे मैंने उसीके प्राणों पर डाका डाला—"

बुत की तरह बैठे हुए डा० नागेश को तब सहसा भस्मासुर की कहानी याद आ गई । किसीके सिर पर हाथ रखकर जला देने का वर उसने शिव से पाया था और सबसे पहले उन्हींको जला देने को वह दौड़ा । विष्णु न होते तो शायद वह शिव को भस्म कर देता, पर आज जब भस्मासुर शिव को भस्म करने दौड़ा तो वे भागे नहीं उसके हाथ से भस्म हो गये, मानो अपने शरीर के साथ उन्होंने मानव के पापों को भी भस्म करना चाहा था ।

डाक्टर को अचरज हुआ उनके भीतर भी ज्ञान है। जैसे इस रोगी ने उनके ज्ञान चक्षु खोल दिये हैं; पर वह स्वयं तो संज्ञाहीन-सा उसी प्रकार लेटा था। रह-रहकर उसके ओठ फड़क उठते थे, जैसे वह स्वप्न में बड़बड़ाने लगता हो। डाक्टर ने नर्स को छोड़कर सबको चले जाने को कह दिया। स्वयं वे उसके पास जाकर बैठे। तब रात गहरी हो चली थी। शून्य में तनिक सी ध्वनि गहरा उठती थी। कहते हैं शून्य सहस्त्रों जिह्वाओं से बोलता है, विशेषकर मृत्यु के आंगन का शून्य। शून्य मस्तिष्क विचारों के तूफान से गूंजने लगा, पर वे सब ओर से ध्यान हटाकर रोगी की उच्छ्वासित वाणी सुनने लगे। वह रह-रहकर बोल उठता था, "जिस समय वह मानवता की प्राण प्रतिष्ठा के लिए प्राणों को होम रहा था उस समय मैंने अपने प्राणों की रक्षा के लिए हिंसा का स्वर उठाया। उस समय मैंने गीता के कृष्ण की दुहाई दी और शस्त्र-बल का प्रचार किया। जिस समय वह दुश्मन को दोस्त बनाने में लगा हुआ था मैंने लोगों को दुश्मन पर हमला बोल देने को उकसाया— यह सब मैंने किया, मैंने जो अपने को उसका शिष्य, उसका साथी कहता था—!"

उसकी फुसफुसाहट धीमी पड़ती जाती। डाक्टर और भी पास खिंच आए। सोचने लगे-आदमी क्या है! जीवनकी समस्त शक्ति लगाकर पहले क्षण वह एक तथ्य का प्रतिपादन करता है परन्तु दूसरे ही क्षण उसे पता लगता है कि वह जिस भूमि पर खड़ा था बिलकुल कच्ची थी। वह केवल सन के छूछे गोले छोड़ रहा था।

'कायर' डाक्टर ने तीव्रता से कहा और तभी सन्तकुमार बड़बड़ाया—"मैं कायर था और वह वीर। कायर हत्या करता है; वीर जीवन देता है।" डाक्टर को न जाने क्या हुआ ? पुकारा, "सन्तकुमार !'

सन्तकुमार उसी तरह बड़बड़ा रहा था।

डाक्टर ने फिर पुकारा—"सन्तकुमार ! सुनो—"

उत्तर में नर्स शीघ्रता से आई, बोली—"क्या. है डाक्टर ?"

डाक्टर चौंके। धीरे से कहा, "कुछ नहीं।" फिर कुछ क्षण सन्नाटा सा छाया रहा। डाक्टर के मन से उमड़ घुमड़ कर कुछ विचार उठ रहे थे। उन्हींको रोगी पर प्रकट करना चाहते थे पर वह तो संज्ञाहीन था इसलिए कागज उठाकर वह लिखने लगे, "व्यक्ति का अस्तित्व काम में है। गांधी अपने काम के कारण गांधी था। वह मर गया पर उसका काम अभी नहीं मरा। व्यक्ति की भांति उसके प्राण तुरंत नहीं निकले। यदि कोई अपने प्राण खपाकर उसके काम की रक्षा करे तो गांधी फिर जी उठेगा, उसी प्रकार जिस प्रकार एक दिन ईसा जी उठे थे!" लिख लिया तो स्वयं

उसे कई बार फुसफुसाकर पढ़ा, फिर झुककर यन्त्रवत् रोगी के कान के पास ले जाकर पढ़ने लगे पर रोगी में अब कोई चेतना न थी। उसकी फुसफुसाहट समाप्त हो चुकी थी। वह प्रगाढ़ निद्रा में सो गया था। डाक्टर उठे, उन्होंने अपने को सम्हाला, उनकी चेतना लौटी। उन्होंने रोगी की परीक्षा की। उन्हें लगा अब उनके वहां रहने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए वह उठे और नर्स से कहा—"सिस्टर, रोगी अब सवेरे से पहले नहीं जागेगा, फिर भी कोई बात हो तो मुझे सूचना दी जाये।"

"बहुत अच्छा।"

"और देखो, जब यह जागे तो यह पत्र उसे दे देना।"

"जी, दे दूंगी।"

उसके बाद डाक्टर चले गये। जैसे कि उनका विचार था, रोगी सूर्य के प्रकाश के साथ ही जागा। वह कई क्षण दृष्टि घुमाता रहा फिर अचरज से पूछा—"मैं कहां हूं ?"

नर्स ने उत्तर दिया—"क्यों ! आप अस्पताल में हैं।"

"मैं अस्पताल में हूं। अस्पताल में क्यों ?"

तभी नर्स ने डाक्टर का परचा उसे दिया। उसने एक बार नर्स को देखा फिर परचे को। उसे पढ़ा और रख दिया, पर दूसरे ही क्षण उसे फिर उठाया और पढ़ा। फिर एक दम नर्स से पूछा—"क्या वह जी सकता है ?"

"तो फिर ठीक है"—यह कहकर वह उठ बैठा। बहुत देर तक बैठा रहा, देखता रहा फिर खड़ा होकर बाहर जाने लगा। नर्स ने घबराकर पूछा—'आप कहां जा रहे हैं ?"

"क्यों ? अपने घर।"

"नहीं, नहीं, आप बीमार हैं...।"

वह स्वस्थ व्यक्ति की भांति हंसा, बोला—"डरो नहीं, नर्स। मैं बिलकुल ठीक हूं।"

"फिर भी डाक्टर से पूछे बिना आप नहीं जा सकेंगे।"

तभी डाक्टर ने वहां प्रवेश किया। रोगी को खड़े देखकर वह मुस्कराये—"अहा सन्तकुमारजी, क्या हाल है ?"

सन्तकुमार ने कहा—"आपकी कृपा है डाक्टर साहब, मैं घर जा रहा हूं।"

"अभी ?"

"जी हां।"

"आप पूर्ण स्वस्थ हैं।"

"जी हां, स्वस्थ होने के मार्ग का मुझे पता लग गया है।"

"ओह, इतनी शीघ्र" डाक्टर ने हंसकर कहा। फिर बोले, "अभी ठहरो, चाय पीकर जाना।"

पर सन्तकुमार रुका नहीं चला ही गया। जाते समय उसने डाक्टर की ओर ऐसी कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से देखा कि वह सकपकाकर रह गये, कुछ कह न सके। जाने के बाद ही उन्हें होश आया, पर अब वह पूर्ण शान्त थे। आज उन्होंने शल्य-चिकित्सा में एक अद्भुत आविष्कार किया था। प्रतिदिन वह शरीर चीरा करते थे, पर आज उन्होंने शरीर की आत्मा को चीरा था और यही दुःख भी था; क्योंकि जो सफलता आसानी से मिल जाती है वह आसानी से चली भी जाती है।

उनका यह भय ठीक निकला। एक दिन डूबते सूर्य के प्रकाश में उन्होंने उसी भयावह मूर्ति को फिर देखा। तब वह अस्पताल से लौट कर कपड़े उतार रहे थे कि सुना कोई करुण में स्वर पुकार रहा है—"डाक्टर साहब ! डाक्टर साहब ! !"

डाक्टर साहब चौंके। नौकर से कहा—"देखो कौन है ?"

नौकर ने आकर बताया—"जी। मुझे तो कोई पागल जान पड़ता है।"

उनका माथा ठनका। आकर देखा तो सन्तकुमार सशरीर उपस्थित थे, पूछा—"कहिये क्या हाल है ?"

सन्तकुमार ने उत्तर दिया—"डाक्टर साहब ! मेरे मस्तिष्क में फिर तीव्र पीड़ा होने लगी है। कृपया उसे चीर दीजिए।"

इस बार वह विक्षिप्त से अधिक दयनीय थे। डाक्टर क्षण भर कुछ नहीं बोले तो बड़ी विनम्रता से हाथ जोड़कर कहा—"डाक्टर ! आप चिन्ता न करिये, आपरेशन कर दीजिये। बड़ी कृपा होगी।"

डाक्टर बोले "ऑपरेशन तो अस्पताल में हो सकता है।"

"तो मैं वहीं आऊंगा। कब आऊं ?"

"जब आप चाहें।"

"तो मैं कल दोपहर को आऊंगा।"

और फिर बिना कुछ कहे नम्रता से उठे और प्रणाम करके चले गये। चले गये तो डाक्टर को होश आया। शीघ्रता से फोन पर आये। कई डाक्टरों से उन्होंने मंत्रणा की और कल दोपहर को आने का निमंत्रण दिया। उन लोगों को भी इस विचित्र

रोगी में दिलचस्पी थी इसलिए वे अगले दिन दोपहर को ठीक समय पर अस्पताल में आ उपस्थित हुए। धीरे-धीरे दोपहर बीतने लगा और डाक्टर नागेश का भय बढ़ने लगा कि इसी समय नर्स ने आकर कहा—"डाक्टर ! जल्दी चलिए ।"

क्यों ? क्या वह आ गया ?

"जी हां, पर...।"

"पर क्या ?"

"वह बुरी तरह घायल है ।"

"ओह, क्या उसने अपना सिर फोड़ लिया ?"

"जी नहीं," उसके साथ आनेवाले व्यक्ति ने बताया—"उनके पड़ोस में एक मुसलमान के मकान को लेकर कई दिन से झगड़ा चल रहा था । एक स्थानीय समृद्ध व्यक्ति उसे घेरे हुए थे पर साथ ही शरणार्थी कहते थे । वह मकान उन्हें मिलना चाहिए इसी बात पर आज झगड़ा बढ़ गया । दोनों दल लाठियां ले आये । सन्तकुमार को पता लगा तो वे हाथ जोड़कर दोनों दलों से शान्ति की प्रार्थना करने लगे । कहा—'आगे चलकर मकान किसी को मिले पर आज उसमें शरणार्थी ही रह सकते हैं ।' इस पर वे सज्जन बिगड़ उठे । झगड़ा यहां तक बढ़ा कि लाठियां चल गईं । सन्तकुमार से नहीं रहा गया । वे बीच में जा खड़े हुए और जो लाठियां एक दूसरे की हत्या करने को उठी थीं एक साथ उनके सिर पर पड़ी ।"

वे घायल के पास आ गये थे । डाक्टर नागेश का हृदय करुणा और आदर से द्रवीभूत हो रहा था । उन्होंने देखा—रक्त से लथपथ सन्तकुमार सामने लेटे हैं । उनका शरीर शिथिल है पर नेत्रों में अद्भुत शान्ति झलक उठी है । दृष्टि मिली तो वह मुस्कराये । संकेत से डाक्टर को पास बुलाया, कहा—"मैं व्यर्थ ही भटक रहा था । यह आपरेशन आप तो सौ जन्म में भी नहीं कर सकते थे । मेरे भाग्य अच्छे थे कि आज अचानक ही मुझे मेरे डाक्टर के दर्शन हो गये । उस दिन आपने संकेत तो किया था पर मैं ठीक समझ न सका । आज समझा हूं ।"

वह बोल रहे थे और डाक्टर नागेश अपलक ध्यानस्थ की भांति उनको देख रहे थे; पर तभी सहसा उनकी दृष्टि कांपी, सकपकाकर कहा—"डा० कुमार, शीघ्रता करो इन्हें रूम नं० पांच में ले चलो । जल्दी..."

सन्तकुमार ने जाते-जाते उसी-तरह कहा—"डरो नहीं डाक्टर ! मैं जिऊँगा । गांधीजी को पुनर्जीवित करने के लिए मुझे अभी बहुत दिन जीना होगा ।"

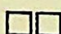
○

मण्डल द्वारा प्रकाशित

कहानी साहित्य



- दुःखी दुनिया
- जातक कथाएं
- प्रकाश की रेखा
- नैतिक कथाएं
- अमर कथाएं
- आदर्श कथाएं
- ज्ञान कथाएं
- कहावतों की कहानियां
- प्रेरक कथाएं
- आलोक कथाएं
- पीड़ पराई
- बहता पानी निर्मला
- कुब्जा सुन्दरी
- कृष्णकथा
- सप्तदशी





सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

ISBN 81-7309-091-2